# हुजूर

[ उपन्यास ]

●

रांगेय राघव

सितम्बर

१९५२

स्वर्गीय

**प्रिय सुन्दरसिंह**

की

स्मृति को

समर्पित

## : एक :

दुर्भाग्य की बात ही है। हमारी भी संसार में अनेक पीढियाँ बीत चुकी हैं, किंतु उनका हम लोगों ने कोई ब्यौरा नहीं रखा। रखा भी तो आदमी ने जिसको ब्यौरा रखने का कुछ वहम है। मैं वहम इस लिये कहता हूँ कि जब मैं आराम से रेशमी और मखमली गद्दों में सोता था, या मेरे भाई लोग हलवाई की भट्टी की गर्म राख में सोते थे, वह अपनी ही उधेड़-बुन में लगा रहता था। याद करता हूँ तो हँसी आती है। और आदमी अपने को बड़ा ईमानदार समझता है। मैं भी पहले इसी राय का था। पर अब मैं इस बात पर भी संदेह करने लगा हूँ! खान्दानी हूँ, मेरा सोचने-समझने का ढंग ज़रा रईसी है, मैं अपने सुख-दुःख के बारे में ही चिंता करता हूँ। बहरकैफ़ यह तो तय है कि आदमी ने हर बार यही ऐलान किया है कि वफ़ादारी में मैं, खैर मुझे छोड़िये, मेरी जाति बहुत अच्छी है। एक कहानी सुनी थी कि एक अरब के पास

उसीके देश का एक घोड़ा था। वह घोड़ा एक बार अपने स्वामी को परेशानी, मुसीबत में देखकर अपने मुँह से उसका कपड़ा पकड़ कर, उसे उठा लाया था। क्या कहूँ कि मेरे बाप-दादे भी इतने ताक़तवर न थे कि किसी आदमी को मुँह से पकड़ कर उठा लाते। पर हमने भी निबाहने की टेक को जाना है, यह हमारे ख़ून में है।

कहते है तुलसीदास नाम के आदमी के पैदा होने पर उसे कहीं घूरे पर फेंक दिया गया था। उस आदमी ने कोई बहुत बड़ी किताब लिखी थी, जिसकी लोग अभी तक इज्जत करते हैं। हमारे किसी पूर्वज का जन्म घूरे पर हुआ था, पर उन्हें उठा कर घर में पाला गया था, जिस पर तुर्रा यह कि हमारे वे पूर्वज किताब तो क्या लिखते, पढ़े भी न थे। वह बात थी तब, जब कि लॉर्ड क्लाइव अपनी आवारा जिंदगी से परेशान होकर विलायत में भटक रहा था। एक मुल्क में रहने वाले हम लोग एक ही तबियत के थे। लॉर्ड क्लाइव आवारा था, क्योंकि पराई औरतों को बुरी नीयत से देखता था, पर हमारे स्वर्गीय पूर्वज भी यही काम करते थे और जब हमारी जाति की स्त्रियाँ उनसे चिढ़ती थीं; आदमियों की बीबियाँ उन्हें प्यार से गोदी में उठा लेती थीं। वे दिन बड़े अजीब थे। इंगलैंड के निवासी तब गंदे रहते थे। लंदन एक मामूली शहर था। और हिंदुस्तान से मसालों के सौदागर जब लौटकर लंदन में यहाँ की तारीफ़ों के पुल बांधते थे, तो हमारे स्वर्गीय पूर्वज जीभ लटका कर अधमिची आँखों से देखते सुनते हुए अपने आपको भारत की दूध-दही की नदियों की कल्पना में भुला देते थे। उन दिनों हमारे देश में आदमियों की औरतें पूरी बाँहें और टखनों तक कपड़े पहनती थीं। लंदन में भी लालटेन जलती थी। मर्द सिर पर नक़ली छल्लेदार बाल पहनते थे। क्या वर्णन होता था भारत का! जब यहाँ के लहलहाते खेतों और हरीभरी दूब का जिक्र होता तो हमारे पूर्वज के कान हिलते। चुनांचे स्वर्गीय पूर्वज लॉर्ड

क्लाइव के पाँवों को ज़रूरत से ज्यादा सूँघा और कूं-कूं की, और इतनी पूँछ हिलाई कि लॉर्ड क्लाइव को झुक कर उनके जिस्म पर उगे घने बालों को थपथपाना पड़ा। बड़ा दिल का काला था वह क्लाइव, मगर उसने सचमुच प्यार किया था तो हमारे ही पूर्वज से। हमारे पूर्वज सोचते कम थे। ज़रा क्लाइव का इशारा हुआ, दौड़ पड़े।

चलने के दिन क्लाइव के पास एक सफ़ेद-सा आदमी आया। उसके पास दो हमारी बिरादरी के प्राणी थे। कहते हैं, वह डील-डौल था, वह शरीर पर बाल थे कि हमारे पूर्वज को क्लाइव की ईमानदारी पर शक होने लगा। कमबख़्त था ही वह ऐसा कि उसकी नीयत पर कुछ यकीन नहीं हो सकता था। एक था वह प्राणी रूस की साइबीरिया का, दूसरा डेनमार्क का। एक बर्फ़ पर चलती स्लेज गाड़ी में जुतता था, दूसरा दूध खेंचने वाली गाड़ी में। बर्फ़ तो यों हमारे पूर्वज के मुल्क में भी थी। शाही तबियत न डेनमार्क वाले में थी, न रूस वाले में। रूस वाले को यह भी नहीं मालूम था कि बादशाह ज़ार वहाँ राज करता है। हमारे पूर्वज की बात और थी वे राजनीतिज्ञों में उठते बैठते थे।

दोनों ने उन्हें देखा तो गुर्राये। लगी डाँट तो चुप हो गये। हमारे पूर्वज ऐसे खड़े रहे जैसे उन्होंने ध्यान ही नहीं दिया।

क्लाइव से बातें चल रही थीं। नया आदमी बोला: "वहाँ बर्फ़ के घर बनाते हैं टण्ड्रा में। है यह वहीं का। आप ले लीजिये।"

लाहौलविलाकूवत! हमारे पूर्वज ने सोचा कि जनाब को पैदा होने के लिये कोई जगह ही नहीं मिली?

वही आज हम हैं। गरीबी के दिन चारुदत्त की तरह काटे नहीं कटते और उसी रूस के कुत्ते के दिन, सुनते हैं, वहाँ के आदमियों की तरह फिर गये हैं। पर पूर्वज के सामने ये सुपन कहाँ थे!

इतना तो नहीं मालूम कि आगे क्या हुआ ? हाँ, अफ़रीका का चक्कर लगा कर वे जहाज में क्लाइव के साथ हिंदुस्तान पहुँचे। यह गर्म मुल्क देखकर हुकूमत का माद्दा हमारे पूर्वज में पहले से कहीं अधिक बढ़ गया। पहले वे नवाब सिराजुद्दौला के सामने भी जाने से डरते थे। वहाँ बाद में दिल्ली के बादशाह के सामने उन्होंने अंग्रेजी झंडे की तरह पूँछ हिलाई गोया वह नई हुकूमत के मालिक थे।

किस नवाब या किस राजा की पाली हुई हमारी जाति की स्त्री से उनका गाँधर्व विवाह हुआ, कब हमारे परदादा के परदादा के परदादा या और भी पुराने दादा पैदा हुए, यह सब अगर मैं गिनाने बैठूँ तो उतने ही पृष्ठ भर जायें, जितने किसी कोष में होते हैं। उन सबको छोड़ता हूँ। साफ़ यह भी नहीं कह सकता कि कौन हमारे वंश में मां, बहिन या स्त्री थी; हमारे रिवाज अभी तक वही चले आरहे हैं, जो कुदरत ने बना दिये हैं। बुरे वे हैं, यह आदमी कहता है। पर आदमी एक बात भूल जाता है कि हम समाज बना कर नहीं रहते। हमारे यहाँ एक दूसरे की जिम्मेदारी नहीं होती। स्त्री-पुरुष, माता-पिता के संबंध जो हमारे आज तक चले आ रहे हैं, वे कभी आदमी और औरत के भी थे। यह तो जब मैंने महाभारत सुनी थी, तब मुझे मालूम हुआ था। 'पर इंसान हमसे ज्यादा समझदार है, उसने अपने नियम बदल लिये हैं। हम क्यों चिंता करें ! इंसान इज्जत का बड़ा भूखा होता है, हम न थे, न हैं, शायद होंगे भी नहीं। तो फिर हम क्यों परेशान हों ! इंसान में और हममें इतना ही फ़र्क है कि वह दुनिया में कुदरत को बदलने की ताकत रखता है, वह दिन पर दिन चीजों की हेर-फेर करता है। हम ज्यादा से ज्यादा भिट खोद लेंगे, या सूंघकर पीछा कर लेंगे। हम दुनिया को बदल नहीं सकते और इस तरह एक-एक करके सब पर आदमी ही हावी हो गया है। अपने को

किसका गिला ! धोबी के यहाँ रहे, तो न घर के न घाट के, जंगल में रहे तो शेर की हुकूमत थी, आदमी के गांवों और शहरों में आकर ही क्या नाक कटी जाती थी !

किस्सा वहाँ से शुरू करूँ जहाँ से मैं पैदा हुआ था। मीरजाफ़र की ग़द्दारी, सल्तनतों की उखाड़-पछाड़, और ग़दर और न जाने क्या-क्या नहीं हुआ, न हमें पहले महायुद्ध की याद है, न हमने लोकमान्य तिलक को ही देखा। हमें तो इतना याद है कि यह सन् १९३१ ई० की बात है। कांग्रेस के जुलूसों के शोरगुल से जब हमने अपनी आंखें खोल कर टुमटुमा कर देखा था तो एक गोरे रंग की सत्रह बरस की लड़की ने हमें अपने गालों से लगाकर सामने खड़ी काली आयाह से कहा था: कितना प्यारा है !

मेरी माँ पास ही पड़ी थी। उसके नीचे पहाड़ी कंबल बिछे हुए थे। वह कुछ सुस्त हुई-सी थकी-सी दिखाई देती थी। एकाएक अनेक लड़कियों के खिलखिलाने की आवाज सुनाई दी। हम समझे नहीं। हमने कान फरफराया। लड़कियाँ सब अंगरेज थीं। आयाह को देखा चाहिये था उस वक्त ! ऊपर के सफ़ेद दांत सब बाहर चमक रहे थे और ऐसी आँखों से देख रहीं थीं जैसे मुल्के शैतान से नजात पाकर खुदा की बच्चियों की जन्नत में आगई थी।

एक जो आई तो मुझे अपने हाथों में भर लिया और मेरे माथे पर अपने होंठ धर दिये। उस वक्त मैं बच्चा था। मैंने सोचा शायद यह भी मेरी मां है।

'आयाह !' झंकारती हुई आवाज में कप्तान साहब की लड़की ने आज्ञा दी : 'दूध लाओ।'

'लाई हुज़ूर :' आयाह चली गई। इसके बाद हम कुछ न सुन सके, क्योंकि हमारी मां के पास हमारे भाई-बहिन सरकने लगे थे।

हमें इन बेदरदों पर गुस्सा-सा हो आया कि हमीं को क्यों अलग कर लिया गया है। आयाह ने दूध लाकर रख दिया, शीशे की गहरी प्लेट थी। एक लड़की ने हमें उठाकर उसके पास रखकर हमारा मुंह उस प्लेट में डाल दिया। नादान तो हम थे ही। हमारी नाक दूध में डूब गई।

दो सांस लीं कि परेशान हो गये। सारी लड़कियाँ हँस पड़ीं। एक ने कहाः मेरी! अभी बहुत छोटा है। बच्चा है बच्चा!

दूसरी ने कहाः। तुम्हें मुबारक हो मेरी!

फिर कुछ अजीब तरह से वे लड़कियां हँसीं। मेरी जरा झेंप गई। उसके गाल सुर्ख हो गये। तब हम बहुत छोटे थे, वर्ना समझ गये होते कि वे किस बारे में बातें कर रहीं थीं। पर तब हम दूध पीने लगे। आपने कभी ग़ौर किया है कि हम लोग जीभ से चाट कर पीते हैं। धीरे धीरे पी रहे थे। सोच रहे थे कि गाय का दूध है। इसी को आदमी के बच्चे पीते हैं। इसमें जो जायका है वह मां के दूध से अच्छा है ......

पर सोचने का वक्त नहीं मिला।

एक लड़की जो कुछ मोटी थी, आँखों पर चश्मा लगाये थी, बोल उठी : बच्चा बड़ा खूबसूरत है।

'बच्चा तो' आयाह ने कहा— 'सरकार गधे का भी अच्छा होता है।'

लड़कियाँ सब हँस दीं। हमें कुछ बेइज्जती सी महसूस हुई। आयाह हमें कुछ मुंहफट और बद्तमीज़ दिखाई दी। कहानी है कि धोबी पर गदहा चढ़कर पिटा था, हम आज तक नहीं पिटे। पर फिर सोचा शायद आयाह का बच्चा होगा तो वह उसकी भी तारीफ़ करेगी। पर मौक़ा कुछ ऐसा था कि बहस करने की गुंजायश नहीं थी। लिहाज़ा सोचा न बोलेंगे तो ही ठीक रहेगा। ख़ामोश हो गये और अपना उल्लू

सीधा करते रहे। उस वक्त हम अपने को लॉर्ड क्लाइव की औलाद-सा ही समझते थे। हिंदुस्तानी गाय का दूध पी रहे थे। फिर फ़िक्र किस बात की थी। हम अपने को जो अंग्रेज़ समझते थे उसकी सिर्फ़ एक वजह थी कि हमारा ख़ान्दान अभी तक अंगरेजों में ही बँटता चला आरहा था।

हमारी क़िस्मत इतनी सादा नहीं थी कि हम भी आराम से ही रहे आते। आज हमें पैदा हुए बीस बरस होने को आये। लोग कहते हैं कि हम बीस बरस ही जीते हैं, तो समझिये अब हमारा वक़्त क़रीब आ गया है। हमें उम्मीद थी कि हम मरेंगे तो हमारी क़ब्र पर कोई प्यार से पत्थर लगायेगा। कोई एक आध फूल डालेगा। पर अब क्या उम्मीद करें! ऐ बदनसीब ज़िंदगी! बड़े-बड़े राजा नवाबों के डेरे उठ गये, तू क्या सोच रही है? क्यों तेरी तबियत की रंगीनी नहीं बदलती! क्यों तू बावली-सी इधर-उधर भटकती फिरती है।

हे भगवान! तूने मुझे सुख में पैदा किया था, फिर ऐसे दुःख में क्यों पटक दिया! क्या मेरा सुख एक पाप था? जैसे-जैसे पलट कर देखता हूँ दिल से धुंआ-सा उठने लगता है।

## : दो :

कप्तान, तबियत का अंगरेज था, क्योंकि वह जाति का अंगरेज था। पहले वह फौज में नौकर था। तब वह मेजर हो गया था। अब वह बूढ़ा-सा था। पहले महायुद्ध में लड़ा था, बोअर युद्ध में गया था और सल्तनते बर्त्तानिया के न डूबनेवाले सूरज को उसने कैनाडा से लेकर पूर्वी द्वीप समूह तक देखा था। उसके पैदा होने के वक्त मलका विक्टोरिया का राज था। तब अंगरेजी झंडे की फरफराहट को देखकर समुद्र की लहरें थरथरातीं थीं। अंगरेज यह समझते थे कि वे दुनिया पर राज करने के लिये पैदा हुए थे। उनका कठोर अहंकार यदि भारत के उत्तर में हिमालय से न टकराया होता तो शायद रूस में खांडा बजता। पर अब वे दिन नहीं रहे थे। मेजर जब रिटायर हुआ तो जो घास उसने नौकरी में काटी थी, उसे हिंदुस्तान की धूप में सुखाने के लिये अब वह हिंदुस्तान में आकर पुलिस में सुपरिंटेंडेंट हो गया था और इसीलिये वह

कप्तान कहलाता था। उसके मुँह पर लंबी मूंछें थीं। और मुले हुए गाल थे। उसके ठाठ यह थे कि हिंदुस्तानियों को वह मेरा भाई कहा करता था। ग़नीमत इतनी थी कि उसकी मेम मुझे गोद में बिठाती थी, बेटी मेरी सीने से लगा लेती थी, और वह फिर भी सख्त रहता था। जब कभी मेरी तबियत अपना कोई काम निकालने की होती तो मैं उसके पांव पर लोटता, और कप्तान बड़ी कठोरता से हँसता और कहताः अच्छा, अच्छा! मेरी!

मेरी अपनी नीली आँखों से देखती और कहती-डैडी! जैक बड़ा अच्छा कुत्ता है।

अपनी नज़र मेज़ पर पड़े नये शोरबे की उठती गर्म भाफ पर थी। हमारे कप्तान का मकान क्या था! एक बंगला। चारों तरफ दूर-दूर तक फैले हुए मैदान। जब कोई घोड़ागाड़ी आती तो उसे काफ़ी लंबा रास्ता तय करना पड़ता था। मैं अक्सर उस बड़े ऊँचे-नीचे मैदान में घूमता। कभी दीमकों का भिट देखता, कभी सरपट चाल चल कर तीतरों को पकड़ने की कोशिश करता। पीछे ही कब्रिस्तान था जहाँ ग़रीब मुसलमान तीतर बटेर लाकर पिंजरे में से नर और मादा में से एक को बंद रखकर, दूसरे को छोड़ कर घुमाते थे। नवाबी की यह बू उनमें बाकी थी।

बरामदे से बाहर चपरासी बैठते और आपस में गप्पें हांकते। उनकी आवाज़ बड़ी सँधी हुई होती। हंसते तो लगता कि पानी में डूबते की घुटन है। उन्हें यही आज्ञा थी कि वे अपनी और किसी बाहर के की आवाज को रोमन ढंग के बराम्दे के खंभों को पार करके भीतर न जाने दें। विलायत का राजा तो अदृश्य था, पर उसके प्रतिनिधि भी अपने चारों तरफ़ ऐसे बंधन बनाकर रखते थे कि उन तक पहुँचना एक सरल काम नहीं था। वे अपनी रक्षा, अपने को सबसे अलग रखकर, करते थे।

लौन की हरियाली एक मखमली कालीन की तरह फैली हुई थी। उसके चारों ओर फूल लगे हुए थे। वे प्रायः विलायती फूल थे। मैंने सूंघा। उनमें से किसी में भी खुशबू न थी। राज़ समझ में आया। अंगरेज़ जो लाया था, उसमें रंग था, चटक थी, पर रूह की महक उसमें कहीं नहीं थी।

और घन पेड़ों की छाया में जब मैं घूमता तो मुझे याद आता। मेरी अंगरेज़ी की कविताएं पढ़ती तो उनमें भी ऐसी छायाओं का ज़िक्र आता। वह रोज़ेटी और शैली की बड़ी शौकीन थी। जब उसे बात करने को कोई न मिलता तो वह मुझे पकड़ कर पांवों के पास बिठा लेती और कुछ सुनाई देने लायक स्वर से हांफती-सी कविताएं पढ़ती थी।

एक किनारे पर भंगी रहता था। वह सरकारी आदमी था। सिर पर साफ़ा बांधता। इस अहाते में वह अपने को बस कप्तान खान्दान के बाद ही समझता था। यहाँ बड़े-बड़े रईस आकर उससे बात करते थे। उसकी खुरखुरी मूंछें देखकर मेरी मूंछ के सारे बाल खड़े हो जाते थे।

उसका खान्दान छोटा था, पर बिरादरी बड़ी थी। साहब लोगों ने इसी जाति को अपने घर का अधिकांश कामकाज करने को रखा था। ईसाई थे, संसार का कल्याण करते थे। और इस प्रकार अलग, समाज से भारतीय प्रथा से अलग रहने की प्रकृति को, भारतीय जीवन की सबसे बड़ी कमज़ोरी छूआछूत का भी, उन्होंने अपनी हुकूमत क़ायम रखने के लिये स्तैमाल कर लिया था। भंगिन की आँखों में काजल न हो, पर होठों पर पान ज़रूर रहता था। और भंगी जब बाजरे की जली रोटी-सा था, भंगिन हाल के गूंधे सफ़ेद गेहूँ के आटे-सी थी।

धोबी सिर पर लादी ले जाता और अहाते के पीछे ही पड़े हुए ताल में कपड़े धो लाता। धोबिन ताल पर गाती, अहाते में फुसफुसाती क्योंकि वहाँ साहब का डर था। चाँदी के गहने उसके पास खूब थे। बिरादरी

में इज्ज़त थी। जब ब्याह होता तो धोबी तो फेंटा बांध कर धोबियों के साथ ढेर सारी शराब पीता, पर धोबिन अपने गोद के बच्चे को अपने चार बच्ची-बच्चों के हवाले करके मदिरा पीकर ताल ठोक कर कूल्हे मटका कर गीत गा-गा कर नाचती। पर अहाते में मुझे लगता कि यह धोबी भी काला अंग्रेज था। बड़ी पैनी आँखें थीं उसकी।

गोया मकान क्या था, शहर था! जो कुछ जरूरी था साहब लोगों ने एक ही जगह लाकर इकट्ठा कर लिया था, जिसका काम पड़ता वह आकर सिर झुकाता, जिससे काम पड़ता उसे सलाम बुलवा दिया जाता। इस सलाम बोलने की प्रथा का अर्थ था कि आकर हमें सलाम करो। उस एकांत जीवन में मेरी मुझे साथ लेकर यूकैलिप्टस की छायाओं में डोलती और अंगरेजी गाने गाती। मुझे ऐसा लगता वह अपने अकेलेपन से दुखी थी। उसके समाज में इतनी अधिक बनावट थी कि शायद उसका मन उचाट हो गया और प्रकट रूप में इसीलिये उसे किसी चीज की जरूरत ही न थी। वह उदास-सी रहती।

मैंने देखा कि उसे हिंदुस्तानियों से इतनी ज्यादा नफ़रत नहीं थी। पर फिर मैंने सोचा: छोटा बच्चा इन्सान को देखकर मुस्कराता है, नफ़रत से देखना उसे समाज सिखाता है। अभी मेरी की उम्र ही क्या थी जो वह समझती। वह शैली पढ़ कर आज़ादी के सुपने देखती थी, उसने मैकाले को पढ़ा होता तो वह भूत बनकर लाशों को ढूंढ कर उनमें समा जाने की कोशिश करती।

उस छोटे से विलायत के चारों तरफ़ हिंदुस्तानियत की दलदल थी। साहब को उसमें फंस जाने का डर था। इसलिये उसमें हिंदुस्तानी कीड़ों को ही उसमें तैरने-मरने-खपने को छोड़ रखा था। और उस दलदल में से आग की-सी गैसें, हवाएं निकलतीं, जिनमें न जाने कितने दिलों की घुटन जलती हवा पर मँडराती और अभी लाचार-सी उसी दलदल में जाकर डूब जाती। साहब उसे देखता और मन ही मन

हंसता। वे उसे छूने से जरूर डरते थे। यह भी एक राज की चाल थी।

मैं अक्सर सोचता कि शहर में कितनी घिचर-पिचर है। यहाँ यम नहीं रहता, यमदूत रहते हैं जो नरक का संचालन करते हैं, सिपाही, थानेदार, देसी अफसर। परमेश्वर की देहलीज पर वे आकर यहाँ नाक रगड़ते हैं, और अपने काले जीवन को सुधारने की प्रेरणा यहीं से लेते हैं। वे अपनी आत्मा का सम्मान इस प्रकार बेचते हुए बालबच्चों का आसरा लेकर करते हैं। उन्हें यह कहने में जरासी भी शर्म महसूस नहीं होती। वहाँ औरतें अपने बच्चों को इसलिये पैदा करती हैं कि उनकी आड़ में बाप गुलामी का तौक पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी औलाद को पहनाता रहे।

कहते हैं पहले बड़ी घोड़ा-गाड़ी चलती थी। साहब लोग दो घोड़ों की गाड़ी में जाते थे। मेम साहिबा जब जाती थी तो एक आदमी सामने कोचवान के पास बंदूक लिये बैठा रहता था। पीछे एक नौकर वर्दी में पास खड़ा रहता था।

अपने वक्त में तो मोटर का रिवाज था। धुर्र से आई, चली गई, पर वे कपड़े-चढ़ी गाड़ियां भी अब फटी-चरों के पास दिखाई देती हैं। युग बदलता है तो अपने सामानों को बदल जाने से, वर्ना नक्शों में कोई फ़र्क नहीं दिखाई देता। उस जमीन की याद करता हूँ, तो लगता है जैसे चेचक के दागों से किसी का चेहरा विकृत हो गया था, वह साफ हो रहा है।

बंगले में एक बड़ा गोल चबूतरा था। उस पर साहब और उसका खान्दान छिड़काव के बाद बैठता था। झुका हुआ, मशक के वजन से लदा भिश्ती डबल में दो मशकें डालता। मेरी उसे देख कर अलीबाबा कहा करती। वह झुक कर सलाम करता।

कभी कभी मुझे ताज्जुब होता कि यह तीन आदमी इतनी हुकमत कैसे करते हैं! क्या हिंदुस्तानियों में प्राण नहीं है?

साहब ने भी दुनिया बसाई थी कि बिस्तर के पास जैसे होलडॉल रखा था। जाने किस दिन गोल करना पड़ जाये। साहब के पास शेक्सपियर भी था, हिंदुस्तान भी था। वकील कार्लायल के साहब जानता था कि अपने पास हिंदुस्तान हमेशा नहीं रहेगा, शेक्सपियर अपने पास बचा रह जायेगा। उसने अपनी संस्कृति को स्कूलों के ज़रिये हिंदुस्तान पर लादा था, वह परम ब्राह्मण की भांति अपनी रक्त-शुद्धि की मर्यादा को लिये सबसे ऊपर ख़ुदा बनकर सब को हिक़ारत की नज़र से देखता हुआ गिद्ध की तरह चट्टान की चोटी पर बैठा था।

बड़ा दिन आ गया था। गिरजों में कानों को लुभानेवाले घंटे बजने लगे थे। उनकी दिगंतव्यापिनी मधुर ध्वनि अंग्रेज़ी राज का लोक-कल्याणकारी स्वप्न दिखाती थी। जब वह ध्वनि ऊंची सूली के पास से रस्सी पकड़ कर नीचे आती थी तो वहाँ एक भव्य, लंबी सफ़ेद दाढ़ीवाला पादरी दिखाई देता था, जिसकी आँखों में करुणा दिखाई देती थी। पर वह केवल करुणा नहीं थी। वह एक उस लुटेरे का स्वरूप था, जो हत्या करके फिर लाश को दफ़ना कर उस पर अपनी सभ्यता का चिह्न सलीब गाड़नेवाला था। उसको फ़ना करने की ज़िंदादिली थी।

ईसामसीह का जन्मदिन था—उस आदमी का, जिसने मरते वक्त भी पापियों के लिये क्षमा माँगी थी; वह, जो ग़ुलामों के साथ था, ऊँचे लोहे के कन्टोप लगानेवाले रोमन शाहंशाहों के साथ न था। जिसकी आँखों में से ग़ुलामों ने आज़ादी का नूर ऐसे लिया था जैसे वह आबेहयात था। वह ईसामसीह आज सल्तनत बर्तानिया का सफ़ेद कफ़न बन गया था, जिसे पादरियों ने हिंदुस्तानियों की ज़िंदा लाश पर उढ़ा दिया था।

हम बहुत खुश बैठे थे। कमरे में सजी हुई मेमसाहिबा थी।

आज तो बड़ी अच्छी लग रही थीं और मेरी तो पूछो नहीं, ऐसी चमक रही थी, उसकी गुलाबी और गोरी देह गहरे रंग के कपड़ों में से ऐसो फूट रही थी जैसे, जैसे, जैसे·····मैंने एक देहाती का गाना सुना था, गोरी तेरी जुबना जैसे बैल के सींग।

बड़ी मेज के चारों तरफ़ कुर्सियाँ लगी हुई थीं और कमरे में एक मस्ती का आलम था।

कप्तान ने प्रवेश किया" वह लंबा-चौड़ा आदमी था। उसके गोरे रंग पर हुकूमत की सुर्खी थी। उसकी आँखें छोटी थीं और नाक लंबी थी। होंठ पतले थे। हाय कठोर दिखाई देते थे। सीना चौड़ा था। देखने में भव्य दिखाई देता था। लेकिन जीवन का बड़ा सत्य था कि वह धोबी की धुली सफ़ेद धोती की तरह था। उसकी ऊपर की तह बिलकुल उज्ज्वल थी, मगर भीतर की तहों में वह गधे के दांतों से चबाया हुआ था, पर ठंडा था।

चपरासी ने ख़बर दी कि पास के गाँव के ज़मीदार ने सूचना दी है कि कुछ कांग्रेसियों ने गांववालों को भड़का दिया है और गाँव वाल सरकशी पर आमादा हैं।

कप्तान सतर्क हो गया।

चपरासी ने फिर कहा : हुज़ूर! आदमी बाहर खड़ा है। गाँववाले कहते हैं कि अब तो राज उठ गया। सन् सत्तावन दुहरायेंगे।

'ग़दर', कप्तान उठ खड़ा हुआ। एक कोने की तरफ़ जाकर कुछ सोचता रहा। फिर लौट कर आकर बैठ गया।

चपरासी ने फिर कहा : हुज़ूर! वे कहते हैं कि हम अपने देश में अपना राज बनायेंगे।

कप्तान का ख़ून खौल गया। उसने धीरे से कहा : 'बग़ावत'।

मुझे ऐसा लगा जैसे बिजली गिराने के पहले घना बादल एक बार धीरे से गरज कर ताकत इकट्ठी करता है।

'हूम ! दरोगा को बुलाओ ।' कप्तान ने कहा ।

चपरासी चला गया। मेमसाहिबा चुप बैठी थीं अभी तक, अब उन्होंने कहा : डियर ! [ यानी प्रियतम ] इतनी उत्तेजना की क्या जरूरत है ! गाँववाले बेवकूफ़ होते हैं । नेटिव हैं [ यानी यहाँ मक़सद गुलामों से था ] उन्हें किसी ने भड़का दिया है ।'

कप्तान अपने को शायद दिल में अपनी औरत से ज्यादा अक्लमंद समझता था । उसने मुस्कराहट तो दिखाई, पर चपरासी के लिये घंटी बजाई । वह आवाज़ के साथ खिंचा चला आया । चपरासी ने कहा : हुज़ूर !

'आदमी गया ?' कप्तान ने पूछा ।

मेरी दुम उठ गई । मैंने सोचा कि अब मजा आयेगा ।

'जी हाँ हुज़ूर ।'

'जाओ, कप्तान ने कहा ।

चपरासी गया और लौट आया ।

'क्या है ?' मेमसाहिबा ने झटके से दो दफे आवाज़ की, पतली कमर को झटके देकर पूछा । वे परेशान आ गई थीं ।

'सरकार' चपरासी ने कहा । थानेदार साहब हाजिर हुए हैं ।

'हूँ' कप्तान ने कहा । उनकी आँखों में यह रोष जरूर था कि आज का मांगलिक और पवित्र दिन बिगड़ा जा रहा है ।

कप्तान कुछ देर सोचता रहा । मेमसाहिबा अब भी चुप थीं । उनकी आँखों से यह प्रकट हो रहा था कि वे इस चपरासी के सामने नहीं बोलना चाहतीं जो अंततः देशी है । वह तो एक ऐसी ईंट है, जिसे कभी-कभी कीचड़ में डाल दिया जाता है कि उस ईंट पर पांव रखकर बिना, कीचड़ छुए रास्ता पार कर दिया जाये । कप्तान कुछ कुर्सी पर झुका, फिर उठ खड़ा हुआ ।

मेरी ने कहा : गव्नर ! [ पिता के लिये सम्मानसूचक शब्द ]

कप्तान की आँखों में स्नेह दिखाई दिया जैसे लाल तये लोहे पर ठंडे हथौड़े की चोट ने एक दौंचा लगा दिया। वह चला गया।

बाहर किसी के भारी बूटों को दबाके चलने की आवाज़ सुनाई दी। वह थानेदार था। मैं भी बाहर चला गया था। ज़रा मैंने सोचा कि देखा तो जाय कि क्या होता है? मेरे झबरे बालों पर नई कंघी फेरी गई थी। मैं क्या किसी से कम था! दरोगा के साफ़े पर एक जरी का छोटा झब्बा था। मेरे सारे ज़िस्म पर झब्बेदार बाल थे। साहब की नज़र में मेरी कीमत दरोगा से कहीं ज्यादा थी।

कप्तान बाहर दिखाई दिया। इससे पहले कि मैं कप्तान के पैरों की आड़ से देख सकूं, खट से एड़ियाँमिलीं और आवाज़ आई– हुजूर!

मोटा दरोगा भारी भरकम था। रिश्वत का आटा और दूध और ईंधन और झूट, फ़रेब और मक्कारी सब मिल कर इन्सान की शक्ल में गुलामी के पट्टे पर दस्तखत करके आये थे। तबियत फड़क गई देख कर! इस वक्त दुम दबाये खड़ा था। हम जानते थे, वह बाहर पहुँचेगा कि दुम खड़ी करेगा हमारी तरह, पर दुम से वार करेगा बिच्छू के डंक की तरह।

हम वहाँ से हट गये। जानते थे खून-खराबा होगा।

गिरजाघर से लौटे तो शाम हो चली थी। दूसरा दिन भी बीत गया। होनी थी सो हो ही गई।

ठंड काफी थी। मेम साहिबा की तबियत ज़रा अलील थी, क्योंकि बड़े दिन के सिलसिले में बहुत से लोगों की सलामी लेते-लेते थक गई थीं। मैं सोफ़ा पर लेटा। फिर हम ऊब-से गये। ज़रा कमरे में चहल-क़दमी-सी की। कुछ देर गुसलखाने के बांई तरफ़ के कमरे में गरमाये, और तभी अचानक एक हल्की फुसफुसाहट सुन कर चौंके—यह क्या! चले तो, फिर मुड़ कर बाहर बराम्दे में झांक कर देखा। कुछ नहीं। बहुत ही हल्की आवाज़ थी। खुदा क़सम, हम तो सूंघकर पहँचानते

है, वर्ना कोई क्या समझता ।

घर में मेम साहिबा थीं जो सो रही थीं । वे अभी तक काले आदमियों की काली सलामों से चढ़ी थकान को मिटा रही थीं । मजबूर थीं कि सुल्ताने बर्त्तानिया के लिये तकलीफ़ें गवारा कर रही थीं ।

मैं दबे पांव मेरी के कमरे की तरफ़ गया । वहां मेरी नहीं थी । अब मेरा माथा ठनका । हो न हो, कोई राज़ ज़रूर है । मेरी कहाँ गई ? कप्तान साहब बाहर गये थे, क्योंकि उस दिन गांव में गोली चली थी और आज उसकी तफ़तीश थी कि सरकार को गोली चलाने के लिये क्यों मजबूर होना पड़ा !

ऊपर की मंज़िल में तो सिर्फ़ छत थी । वहाँ जाने का रास्ता न था । छत पर मोटी-मोटी तह का छप्पर पड़ा था, जिससे सारा बंगला ठंडा रहता था ।

फिर ? मैं हारनेवाला नहीं था । अपने को फरफरी आई और नाक ज़रा सिकोड़ कर बू ली और चल पड़े तो ऐसे गिरे जैसे कागज़ पर बनी बैल की आँख पर तीर ।

देखा कि एक कोने के कमरे में मेरी खड़ी थी और धोबी का जवान लड़का उसके पाँवों के पास बैठा उसके जूते साफ़ कर रहा था । मैंने सोचा कि लौट चलूँ पर तभी मैंने देखा । मेरी की आँखों में एक चमक थी । वह जैसे किसी घने रहस्य में थी । वह जैसे एक ऐसी उथल-पुथल में थी जिसे वह स्वयं इस समय व्यक्त करने में असमर्थ थी । उसने लड़के का हाथ पकड़ लिया । लड़के ने डरते हुए कहा: मिस साब ! मुझे गोली मार दी जायेगी ।

मेरी ने मुझे देखा और कहा: जैक !

वह जैसे एकदम चिहुँक उठी थी । उसने लड़के से फिर फुसफुसा कर कहा, 'कोई डर नहीं है ।'

मैंने पूंछ हिलाई । मेरी ने मेरी पीठ पर हाथ फेरा ।

'कप्तान साहब तो बाहर गये हैं।' धोबी के उस 'गबरू जवान लड़के ने कहा। वह साहब की पतलून और कमीज़ इनाम में पाये था। रंग उसका कुछ मटियाला था, पर मसें भींग चुकी थीं। उसने फिर कहा: पर मेम सा'ब········!

'सो रही हैं।' मेरी ने अटक कर कहा। और उसकी तरफ़ गूढ़-दृष्टि से देखा। धोबी का लड़का मेरी के पाँवों में मोज़े पहनाने लगा।

मेरी ने ही कहा 'बगल में गुसलख़ाना है, उसमें तुम कपड़े धोने बैठ जाना। मैं यहाँ सोफे पर बैठी रहूँगी। इधर का दरवाज़ा बंद कर दे।'

गुसलखाने के दरवाजे से मैंने बाहर झांका। मेरी ने पांव उठा कर कहा-जूता!

धोबी के लड़के ने आगे जो किया, वह मैं देख नहीं सका, क्योंकि उसी वक्त मुझे धोबी की पालतू देसी 'सामी' नाम की कुतिया दिखाई दी और मैं उस तरफ़ रुजू हुआ। पीछे से दरवाज़ा बंद हो गया। पर सामी बड़ी अदा से खड़ी थी। मुझे पलट कर देखने की फ़ुर्सत कहाँ थी! मेरे जिस्म पर घने बाल फहरा रहे थे। ऐसा ख़ूबसूरत था कि देख कर लोगों की नज़र लगे। बिलकुल अंगरेज़ लगता था। मुझ में हुकूमत का माद्दा बढ़ जो गया था!

पहले तो मैंने सोचा कि यह देशी, मैं विलायती, पर फिर सोचा-जब मेरी और धोबी का लड़का ऐसे प्रेम से बातें कर सकते हैं, तो फिर मुझ में क्या दोष है? और हिन्दुस्तान की यह झूठनों पर पली कुतिया! पर हाय रे किस्मत! सामी ने देखा तो ऐसे चली गई कि मैं देखता ही रह गया। उसे भी अपनी जात का घमंड था!

मुझे लौर्ड क्लाइव की याद हो आई जो अपने वक्त में हिन्दुस्तानी और अंगरेज़ी शादीशुदा औरतों से प्रेम प्रकट किया करता था, और बारबर उनकी डाँट खाकर वैश्याओं में अपनी प्यास बुझाया करता था।

मुझे अंगरेजों पर ताज्जुब हुआ। इस क़दर कमीने आदमी की जो कौम इस तरह इज्ज़त कर सकती है वह क्या इन्सानियत की बू अपने भीतर कायम रख सकती है? वह असल में अपने स्वार्थों से अंधी हो चुकी है।

शाम हो आई। अंधेरा आस्मान से नहीं उतरा, धरती की धूल से निकला और फिर हवा के झोकों पर लहरें मारता आस्मान पर आंधी की तरह चढ़ कर ख़ामोश हो गया। मुहब्बत की तस्वीरें सितारों में चमकने लगीं, दूर टिमटिमाते दियों सी-दूर...बहुत दूर।

कप्तान अपने भारी क़दम रखता हुआ लौट आया था। उसके साथ दो शिकारी कुत्ते थे, जो किसी देसी राजा ने भेजे थे। वे कुत्ते ख़तरनाक थे। निरीह प्राणियों को मार कर खाने में चतुर थे, मगर अंगरेज़ के पैरों पर गुलामों की तरह बैठे थे।

यह राजाओं के कारतूस किसी भरी बन्दूक से चले और यहाँ से लौटे तो चूहों पर चिपकनेवाले पिस्सू बन कर ताकि फिर रियासत में महामारी फैला सकें।

कब अनेक साहब इकट्ठे हुए किस दिन इकट्ठे हुए, यह तो याद नहीं। हाँ, कोई उत्सव था। अपने नीले बाल लिये मेम साहिबा ने ऊपर से नीचे तक क़ीमती रेशमी चोगा पहना। और मेरी ने घुटनों से नीचा साया। धोबी के लड़के की ललचाई आँखों को तसल्ली देती हुई मेरी ने अपने सुनहले वस्त्रों को पिनों से ठीक किया था। किसी को ताज्जुब क्यों हो? तीन दिन की भूख के बाद हमने हिन्दुस्तान की सड़कों पर झूठन खाते आदमियों को देखा था। धोबी के लड़के की आँखें जैसे एक ऐसे हर्ष से पथरा गई थीं, जिसे गूंगे के गुड़ की तरह उसने अनुभव किया था, पर जिसे कहने में उसकी जबान को कट जाने का ख़तरा था। और मोटे, लंबे, अहंकारी साहबों, मेमों की वह महफ़िल देख कर मुझे उन शासकों का ख़याल आया जो अपने भारी बूटों से धरती

को दहलाते, गुलामों की भीड़ पर हंटर चलाते, और फिर आपस में मिल कर नाचते गाते ।

यक़ीन मानिये! कुत्तों की किसी जात ने कुत्तों की किसी दूसरी जात को गुलाम बना कर नहीं रखा । पर मेरी की रूपराशि देख कर मेरा दिल भी उछलने लगा ।

मेज़ों के चारों तरफ़ लान पर साहब लोग बैठे बातें कर रहे थे । कोई एक गवैया आया था । स्पेन का था । एक मेम अंगरेज़ी गाना गाती थी । बाजे बजे । अंगरेज़ी तान उठी और फिर शांति के राग धीरे धीरे उतरे और फिर मेरे तान में वह रागिनी अपने उतार-चढ़ाव के साथ गूंजी । यही तो वह राग थे, जिन्हें देसी इसाइयों को रटाया गया था । ईसामसीह के प्राण रक्षक होने का सत्य हिंदी अर्थात् उर्दू–और वह भी बुरी उर्दू-के गीत लिखकर उन्हें अंगरेज़ी ट्यून पर फिट करके गाने बनाये गये थे, जो ईसाई-देसी-भाइयों को सांस्कृतिक भेंट दी गई थी । वे ईसाई-भाई बाप अंगरेज़ की चरण धूलि के समान घिसे हुए, पर हिंदुओं के अत्याचार से छूटे नीच जात – न इधर के, न उधर के, न जात के नाम पर गुलामी उठाये–इन्हीं गानों को गाते थे ।

और मेमों की खिलखिलाती अवाज़ में मैंने सुना जैसे मरघट में नंगी होकर शव-साधना करनेवाली किसी चुड़ैल की चूड़ियाँ बज रही हों ।

दूसरे दिन सुबह शहर में चर्चा चल पड़ी । गांव में जो पुलिस ने इंसाफ़ और पञ्चम जार्ज नाम के बादशाह के नाम पर गांववालों के क़त्ल किये थे, उनको सुनकर शहर में काफ़ी गुस्सा था । कप्तान का नाम ज़ालिमों में गूंज रहा था । मगर उस नादिरशाह को परवाह न थी, क्योंकि वह अपने बादशाह के नाम पर अपने काम कर रहा था जैसे तवायफ़ की लड़की अपनी मां के नाम पर अपनी जवानी बेचती है ।

काली आयाह ने कहा. हुज़ूर !

मेरी ने मुस्करा कर कहा: येस [हां]

आयाह ने कहा: हुजूर! पहले तो बदमाशी करते हैं, फिर बुराई करते हैं।'

'कौन?' मेरी की उज्ज्वल आँखे उठीं।

'शहर के लोग कप्तान साहब से नाराज़ हैं, —आयाह ने धीमे से प्राणदान मांगने के स्वर में कहा।

मेम साहिबा ने कुछ नहीं कहा। उनकी आंखों की वह हिक़ारत—भभकी और मैंने देखा उसी धोबी के लड़के के साथ मुहब्बत से बातें करनेवाली मेरी की आँखें अचानक ही इंगलैंड के नक्शे की तरह दिखाई दीं और उनमें राजनैतिक अत्याचार समंदर की तरह हरहराया और वही हिकारत, पीढ़ी पर पीढ़ी उतरते दुःस्वप्न की कंदीलों की भांति हृदय से उठ कर उसकी काँच की आँखों में चमक उठी। मैं थर्रा गया। तब मुझे लगा, मेरी की बाहों में बंधा धोबी का लड़का गदर के उस सिपाही की तरह था जो तोप के दहाने पर बंधा था। उसकी लाश के चिथड़े-चिथड़े उड़ना भी कठिन न था।

चार बजे के करीब। याद नहीं, कौनसा दिन था। एक गाड़ी दरवाजे पर रुकी। उसमें से एक नौजवान उतरा। वह हाल ही में विलायत से आया था। उसका नाम जॉन ओ' कोहन था। चौड़े कंधे थे। बाल पीछे से कटे थे, पीले थे। आँखें पीली थीं। उसके दाँत कुछ पीले थे। मगर गबरू था। गालों पर टमाटर की सुर्खी थी। चुस्त कपड़े पहने था। कोई अफ़सर था। वह तेज़ फर्राटे से बोलता था।

वह लंबा नौजवान फौज में था। उसकी चाल में एक अकड़ थी। कंधे पर झब्बे से लटकते थे। उस दिन घर में साहब और मेम नहीं थे। वह भीतर घुसा। मेरी ने देख कर आँखे उठाईं। उसको देखकर हाथ बढ़ाया। उसने बड़ी इज्जत से उसका हाथ पकड़ कर

सिर झुका कर सलाम किया।

मेरी की आँखों में मैंने इंसानी छाया देखी, यह वही चमक न थी, जो धोबी के लड़के के सामने थी। यह एक निर्भय मुस्कान थी। उसे योग्य पात्र मिल गया था। वह उसे भीतर ले गई।

अंगरेज़ बात कम करते हैं। परदेसी से तो बहुत ही कम। मेरी ने कहा: मैं तुम्हारा बहुत दिनों से इंतज़ार कर रही थी।

'सच कहती हो?' अफ़सर ने पूछा।

मेरी ने कुछ नहीं कहा। उसकी ओर देखा। वह आँखें देखकर मेरा दिल कुछ अजीब-सी मस्ती की अहमियत का तजुर्बा करने लगा। अफ़सर आगे बढ़ा। मेरी गुलदस्ते के फूल चुनती हुई सी खड़ी रही। उसके गालों पर अब एक सुर्ख तार झनझनाया। अफ़सर और आगे बढ़ा।

उसने मेरी को भुजाओं में भर लिया। मुझे कुछ ऐसा लगा कि पर्दे के पीछे से कोई देख रहा है। धोबी का लड़का वहाँ छिपा हुआ देख रहा था। ज़रूर उसका दिल धकधक कर रहा होगा। पर वह क्या करता! मेरी की शादी इसी अफ़सर से होनेवाली थी। अब वह फौजी अफ़सर के साथ, खिंची तलवारों के बीच में से निकलेगी, इसकी तस्वीर अंग्रेजी अखबारों में छपेगी। सोचने की बात है। क्या उसकी तस्वीर धोबी के लड़के के साथ निकल सकती थी?

हमने शाम को क्या देखा कि धोबी का लड़का अपने नौकरों के क्वार्टर में खाट पर पड़ा है और अजीबसी हालत में है। धोबी ने देखा तो समझा--बेटा को व्याह की ज़रूरत है। वह मूंछों में से मुस्कराया। यह दिन ज़िंदगी में किसने नहीं देखे होते। नौजवान समझते हैं, बड़े लोग कुछ समझते ही नहीं। यह भूल जाते हैं कि वे असल में तरह दे जाते हैं, क्योंकि गधापच्चीसी के यह दिन सब गुज़ार चुके होते हैं, और जो बेवकूफी वे खुद कर चुके होते

है, उसे नई पीढ़ी को करते देख कर उन्हें बड़ा संतोष-सा होता है, कि यह तो हमेशा से होता आ रहा है, होता रहेगा। नई उम्र की मुहब्बत केले के डंठल की तरह होती है। छीलते जाओ, चिकनी और सुंदर, नाज़ुक और मुलायम निकलती है। छीलते जाइये, पात पात में पात निकलते हैं। पर अंत में एक झटके से टूटनेवाला रेशेदार हुस्न, जैसे फ़रेब। पर छोड़ दे रंग तो भट्टी पर भी चढ़ कर न छूटे। ऐसा पक्का! हमने नया ही रंग देखा।

धोबी का लड़का कमरे में घुस कर जूते साफ़ करने लगा। मेरी आई। एकदम देख कर स्तब्ध रह गई। न जाने उसे क्या डर सा लगा। वह असल में उससे नहीं, अब अपने आप से डर रही थी। उसने पहले एक दस रुपये का नोट उस पर फेंक दिया। फिर कहा : 'जानता है, जेल भिजवा डिया जायेगा।'

धोबी का लड़का थर्रा उठा। उसने कहा : मिस सा'ब! मैंने तो कुछ भी नहीं किया।

मेरी हँस दी। धोबी के लड़के ने कहा : हुज़ूर! मुझे अपनी ही अर्दली में रखियेगा।

मेरी ने कहा : 'नहीं'। और उसे घूरा—जैसे कच्चा ही खा जायेगी।

रात को मेज़ पर खाना आने लगा। बावर्ची एक के बाद एक कोर्स लाते। खाने की मेज़ पर कुस्तुंतुनिया, हॉलैंड, रूस और दुनिया भर की बातें होतीं। जान ओं' कॉहन को सीमाप्रांत के पठानों को दबाने जाना था। वहाँ हमेशा ही फौज को रहना पड़ता है। क्योंकि पठान जंगली हैं।

मैं मन ही मन मुस्कराया। पठानों के कबीलों के सरदारों को अंग्रेज रुपया बांटते थे। उन्हें लड़ाते थे और अपनी फौजों को शाँन्ति में भी वहाँ शिक्षण दिया करते थे। इस वक्त कप्तान भी था। सारे के सारे इसी राय के थे हिंदुस्तान की आफत मोल

लेकर, अंग्रेज परेशानी में पड़ गया है, क्योंकि इन काले आदमियों को सभ्य बनाना बड़ा कठिन था।

मैं हँसा। मेरी ने कहा : जैक !

मैं बहुत भोला बन कर उसके पांवों के पास बैठ कर दुम हिलाने लगा।

इसी समय बाहर किसी औरत के रोने की आवाज़ सुनाई दी। उस सन्नाटे में वह हृदय को हिला देनेवाली आवाज़ सुनकर मेरे रोंगटे खड़े हो गये। मेरे मुँह से गुर्राहट निकली। और वह नीरवता खटखट कर के झन्ना कर टूट गई। वह सुपना जैसे किसी बवंडर से टकरा कर चूर हो गया।

'ऐसा बुरा लगता है जैसे कोई कुत्ता रो रहा हो' मेम साहब ने कहा।

चपरासी हाजिर हुआ।

'क्या शोरगुल है ? कप्तान साहब ने पूछा।

'हुजूर। वह गांव में गोली चली थी न ? एक बुढ़िया का लड़का गोली से मारा गया। वह रोने आई है। उसके साथ कुछ गांव वाले हैं। एक कांग्रेसी है।'

'कांग्रेस !' कप्तान से फूत्कार कर कहा-- 'इनकी यह हिम्मत॰!' उसे ताज्जुब हुआ। वह कुछ क्षण तक सोचता रहा। मेरी ने उसकी ओर चौंक कर देखा। और कप्तान क्रोध से उठ खड़ा हुआ, क्योंकि पहले हिन्दुस्तानी अंगरेज़ के मकान के पास ऐसे नहीं फटकता था जैसे कालीय नाग के रहते कोई पंछी जमुना के जहरीले पानी के ऊपर से भी उड़ कर निकलने की हिम्मत नहीं करता था। आज इन हिन्दुस्तानियों की यह जुर्रत कि उसी के मकान पर सत्याग्रह करने आ गये थे !

कप्तान बाहर चला। खाना भी नहीं खतम कर सका। इस बात

को तो कली के रूप में ही वह कुचल देना चाहता था । फूल हो गया तो चूंकि वह हिन्दुस्तानी फूल होगा, महकेगा और दूसरो को अपनी गंध से अपनी ओर आकर्षित कर के बुलायेगा । इतना अवकाश देना तो सल्तनत से ग्रद्दारी थी ।

मैं बाहर निकल आया । देखा कि बाहर बीस तीस डरे से आदमी खड़े थे । वे किसान थे । उनके चेहरे भय से सूखे हुए थे ।

'नहीं जाते ।' एक काँग्रेसी का स्वर उठा– 'गोली मार दोगे ? मारो । खड़े हैं हम । मारो सीने पर । गांधी महात्मा के चेले हैं हम।' उस सूखे से उजड़े शरीर को देख कर मुझे भी ताज्जुब हुआ । 'जान से ही तो मार दोगे कि हमारी आवाज़ भी घोंट दोगे ?' मैंने देखा गाँववालों में हिम्मत जगी । एक आदमी अगर वह अमल का पक्का, सच्चा आदमी हो तो उसको देख कर हज़ारों-लाखों पजमुर्दा सीनों में अंगारा दहक उठता है ।

'चपरासी !' कप्तान का स्वर गूंज उठा ।

'हुज़ूर ।' वही भारी आवाज़ पैरों के पास वफ़ादार कुत्ते की तरह भौंक उठी ।

'पुलिस स्टेशन को पता दो । और इनको बाहर करो । भगा दो ।'

• गांववाले डर से हटे । काँग्रेसी ने फिर कहा: 'न्याय की बात करो । बुढ़िया का बेटा मारा गया है । पहले उसके खाने का इन्तजाम करो ।'

इस बात पर मुझे भी हंसी आई । अरे यम जब ले जाता है तो कौन पहले आदमी का बीमा करा जाता है । साहब क्या यम से भी बढ़ कर है ?

साड़ साड़ करके हंटर बजने की आवाज़ आई और फिर इंसान की घुटन सुनाई दी । चपरासी का हाथ चला । वह पचास गाँववालों को मुर्ग़ा बनाने की हुकूमत रखता था। कांग्रेसी !! किस खेत की मूली थे यह !

और बुढ़िया का चीत्कार सुनाई दिया, फिर डूब गया। कांग्रेसी लहूलुहान धूल में पड़ा था। इसी वक्त पुलिस की बड़ी मोटर आई और उस कांग्रेसी को उठा कर उसमें बंद कर दिया गया। गांव-वालों पर लाठीचार्ज किया गया।

रात के अंधेरे में किसी को मेरी के कमरे की तरफ़ चोर की तरह जाते हुए देख कर कप्तान ने गोली चलादी। एक कराह के साथ वह आदमी गिर गया। गोली गले में से पार हो गई थी। वह काँग्रेसी नहीं था। धोबी का लड़का था। मेरी ने देखा तो भय से आँखें फट गईं। पर जब कप्तान ने बताया, वे उसे कोई बाग़ी समझे थे तो मेरी की आँखों में भाव आया, चलो अच्छा हुआ। यह भी समाप्त हो गया।

पुलिस ने धोबी के ख़ान्दान को बग़ावत में गिरफ़्तार कर लिया क्योंकि मेरी ने कहा कि धोबी के घर में उसके लड़के से बातें करते, उसने अपने कमरे की खिड़की से, उसी कांग्रेसी को देखा था।

चपरासी ने कहाः हुज़ूर मैंने भी देखा था।

मीर मुंशी ने कहा : 'मैं तो अक्सर देखता था। हुज़ूर! इस लड़के में तो सरकशी के बीज थे ही इस धोबी को तो देखिये, यह भी बाग़ी हो गया!'

गुलाम! मेरे दिल ने कहा—रूह गुलाम! खून गुलाम! नमकहराम! जिस धरती का नमक खाते हैं, उसी से यह लोग दग़ा करते हैं।

पर धोबी नेता हो गया। कांग्रेसी उसकी ओर आ गये। शहर के अखबारों में छपाः कप्तान ने गोली चलाई थी सो वह आत्म-रक्षार्थ क़रार दी गई। केस हाईकोर्ट तक गया, क्योंकि शहर के बनियों का रुपया और वकीलों की बहसों ने मामला आगे बढ़ा दिया। दो एक दिन जुलूस भी निकले, पर मोबिन में किसी को कोई दिलचस्पी न थी।

जिस समय अमन की बीन बजी, उस समय फिर सड़क पर एक जबर्दस्त नारा गूंजा 'महात्मा गांधी की जय!'

वह नारा था! वह सारे हिंदुस्तान की बग़ावत का झंडा था, जो हवा में अपना सिर खोल कर पुकार उठा था। उसको सुनकर हज़ार-हज़ार, लाख-लाख, करोड़-करोड़ आदमियों को लगता था कि हिंदुस्तान एक लहलहा मुल्क है, जिसमें न भूख है, न ग़रीबी है, न मजबूरी है, वह आज़ादी की एक पुकार है, वह जीवन की शक्ति है।

मैंने भाग्य-देवता को आकाश में उस समय मुस्कराते हुए देखा। क्या यह ठीक नहीं है?

मुझे भी फरफरी-सी आ गई। मै भीतर आ गया। जुलूस को पुलिस ने तितर बितर-कर दिया। दस-बीसों पर लाठियां पड़ीं, और पुलिसवालों को गंदे चिथड़ों मे आज़ादी के लिये बहा हुआ खून लाठियों से पोछना पड़ा और उन्हें तेल में डुबाना पड़ा, तेल में, ताकि उनकी देह इतनी चिकनी हो जाये कि उस पर जो भी पड़े फ़िसल जाये।

और फिर कुछ दिन बाद जिंदगी एकतार हो गई। इधर दिन के कोने से बंधी, उधर शाम के, और जिंदगी का तार जब बजता तो कप्तान के घर से वही आवाज़ निकलती कि यहाँ अमन है, यहाँ अमन है! मै दूध, रोटी, गोश्त खाता। नया धोबी आ गया था। इसकी धोबिन जालीदार बनियान पहनाती थी। मीर मुंशी ने उसे बड़ा बफ़ादार और अमन-पसंद पाया, इतना कि न वह उनकी तकलीफ देख सकती थी, न कभी अपने को तकलीफ़ देती थी। और मेरी! वह प्रसन्न थी।

पर मैं सोचता यह कैसे हो सकता है? क्या वह इतनी बेदर्द हो सकती है। मैंने छिप कर उसको देखा। सचमुच उसमें कोई ग़म की झलक भी। न थी जॉन ओ' कॉहन ने उसके दिल के पियानो के हर

पर्दे पर उंगलियां दबाई थीं और सबसे सुरीला गाना निकाल लिया था। वह झूमता, वह गूंजती। मेम सा'ब देख कर खुश होतीं। उन्हीं दिनों हमने भी एक पियानो पर अपना गाना निकाल लिया। वह अब लावारिस हो गई सामो थी। उसका बाप यानी धोबी जेल में था। फिर अपने को रोकनेवाला कौन था। कोई नहीं।

'गुड फ्राइडे' आ गया। वह 'अच्छा शुक्रवार' ईसाई त्यौहार था। उसी दिन मसीहा को सूली दी गई थी।

जो हो, दूसरे दिन से डालियाँ आने लगीं। बराम्दे में तहसीलदार कह रहा था मुंशी से— साले काँग्रेसवालों ने भड़काया भी पर मेरे सामने एक न चली।

'कसम से।' चपरासी ने पूछा।

'बोले, क्यों देते हो डाली? अपने बालबच्चों का पेट काट कर क्यों देते हो? नहीं, दोगे तो कोई क्या लेगा?' तहसीलदार कहता रहा—'मैंने चौकीदार से कहा कि यों कैसे काम चलेगा? चौकीदार ने कहा हुजूर सीधी उंगली घी नहीं निकलेगा। बस, फिर तो जो घुड़की दी कि मक्खन अलग, मठ्ठा अलग ......

सब धीरे से हंसे।

साहब खट खट करता आया। सब ने कहा 'सलाम हुजूर!'

हुजूर ने बड़ी गंभीरता से सिर हिला कर जवाब दिया।

तहसीलदार बड़ी नर्मी से पेश आ रहा था। वह साहब को देख कर काफ़ी झुक गया। उसने कहा हुजूर! गांववालों ने खुशी से यह नजर की है।

डालियां देखीं। उफ़! खुशी से। मै गांव में रहा तो न था, पर मैंने साहब के बंगले पर आनेवाले किसानों को देखा था। अगर उनके पास इतना ही सामान दे देने को था तो वे इतने भूखे क्यों नजर आते थे। पर साहब ने स्वीकार कर लिया। वे इतना ही सुनना चाहते थे।

इससे अधिक जानकारी और सोचने में उनका नुकसान था ।

मेरी को देखा तो आज उसमें गुलाब की-सी खुशबू आ रही थी । जॉन ओ'कोहन उसे सिनेमा ले गया । लौटी तो देखा वह एक अजीब मस्ती में सराबोर थी । कभी वह हवाना की बात करती, कभी चीन की ।

मुझे बड़ा ताज्जुब हुआ जब मैंने रात को देखा वे दोनों शराब पी रहे थे । मैं उनके पास ही बैठा था । उन्होंने मेरी नजर पर गौर करना जरूरी नहीं समझा था । मेरी अकेली न थी । वह तो अपनी हुकूमत की एक गैरजिम्मेदार ऐश करनेवाली पुतली थी ।

साहब को भला फ़ुर्सत कहाँ । वह बागडोर संभालने में लगा था । मैं बाहर जाकर सामी के पास बैठ गया । वह गर्भवती थी । मुझे कोई दिलचस्पी नहीं आई । चंद बतखें चल रही थीं, डगमगातीं । कुछ उन्हें भगाया, फिर दौड़ा, फिर भागते हुए ही मेरी के कमरे में पहुँचा । जॉन उसके सीने पर सिर रख कर सोच रहा था ।

फिर सोचा इसमें ताज्जुब की क्या बात है ? इनकी दुनियां का एक पर्दा यह भी है कि ये कामुक हैं । फिर सोचा क्या हिंदुस्तानी नहीं हैं ? हैं वे भी । पर एक अधिकार के गर्व में हैं । दूसरे गरीबी में परेशान ।

और वह चित्र चला गया । डालियाँ खुल रही थीं । मेमसा'ब हिसाब कर रही थीं । अच्छी अच्छी चीजें निकाल कर भीतर रखती जाती थीं । और सामने उनका मीरमुंशी कान दबाये खड़ा था ।

अपन भी तो ऐसे ही दुम का लंगोट लगाते हैं । दुश्मन सामने आया और सारी सिट्टी गुम ! और जहाँ कमजोर सा देखा वहीं उसके सिर पर सवार । किचकिचाकर जो हमला किया तो लहू निकाल कर माने । लहू !

मुझे हाल के बहे हुए खून याद आ गये । मेरे रोंगटे खड़े हो गये

कैसा भयानक था सब ?

निजाम तो वह कि हर आदमी अपने से ऊपरवाले के सामने

गुलाम और अपने से नीचे वाले के सामने शाहंशाह । और असल में सब पुर्जे । पुर्जे जो एक–दूसरे में अपने दांत गड़ा कर उलझे हुए से घूमते है । उनकी अपनी कोई अहमियत नहीं; पर वे तभी तक घूम सकते है जब तक उनमें चाभी लगी हुई है । चाभी खत्म हो जायेगी वे घूमना बंद कर देंगे । उनमें तेल की जगह लहू लगता है ।

मेम साहिब खड़ी थी । सब लोग इधर–उधर काम से लगे हुए थे । मीर मुंशी कुछ दूर खड़ा था । मेमसा'ब फलों की टोकरी को देख रहीं थी ।

साला चपरासी एक नम्बर बदमाश था । वह बड़ी ललचाई नज़र से नारंगियों को देख रहा था । मेमसा'ब का दिल रहम से भर गया । वे मुस्कराईं । आवाज़ दी –'चपरासी !'

'हुजुर !' चपरासी पास आ गया ।

मेमसा'ब ने बड़ी मुलायमियत से कहा: 'यह संटा है । अच्छा होटा है । एक लो । टुम ले लो ।'

तब मेरी समझ में आया । बीबी का क्या गया ! फुफ्फी की लालटेन उठा कर खाला को दे दी । खाला का पंखा उठा कर फुफ्फी को दे दिया । फुफ्फी और खाला दोनों खुश ।

चपरासी ने संतरा उठा के सीधा मुँह में रक्खा ।

'हे , हे, ऐसे नहीं ।' मेम सा'ब ने कहा: 'तुम गढा है ।

'गढा हुजूर!" चपरासी ने कहा । वह समझा नहीं । फिर सोचकर बोला: हुजूर का मतलब गधा से है ?'

'ओ यस यस [ हाँ, हाँ ] ऐसे नहीं खाटा इसे ।'

'तो सरकार कैसे ? चपरासी ने भोला बन कर पूछा ।

'ऐसे । देखो ।' मेमसा'ब ने संतरा छीला । एक फांक दी । चपरासी सब खा गया ।

'मेम सा'ब ने कहा : 'बीज ठूक डो ।'

चपरासी ने बीज थूक दिये। मेम साहिबा एक एक फांक दिये जाती थीं। चपरासी एक एक खाता जाता था। इतना छटा हुआ था कि उसने मेम को भी झांसा दिया। वर्ना भला चपरासी को वह गोरी मेम अपने हाथ से संतरा छील छील कर खिलाती। और चपरासी मुस्कराता भी न था। बड़ा भोला बना खड़ा था। वैसे उसमें सिफ़त यह थी कि दांये हाथ से साहब के सामने मेज़ तक कागज़ पहुँचाता था, बांयें हाथ से सपाटे से रिश्वत ले लेता था। उसकी यह उस्तादी देख कर मीर मुंशी का दिल बलगम की तरह गले में अटक रहा था। नफ़रत तो ऐसी आ रही थी कि उगल ही देते। मुंशीजी कुढ़ रहे थे। पर फिर सोच कर रह जाते थे कि बलगम नहीं, यह तो दिल है।

मीर मुंशी झूठी गवाही के उस्ताद थे, बाप दो पैसे छोड़ कर मरा था, मुन्शी अपने हर बच्चे को सुबह दो दो पैसे बांट देते थे। यह हैसियत का फ़र्क़ पड़ गया था। एक घर का पक्का मकान था, दो पड़ोस के झपसट में दबा लिये थे। उनका बांये हाथ का खेल था किसी को किसी से लड़ा कर झूठा मुक़दमा दायर करना, कराना और दोनों का इंसाफ़ करके रुपया खाना। वे कहा करते थे कि दो गंवारों का वज़न तब तक मूंग जैसा है जब तक उनकी जेब में पैसा नहीं है। पैसा आया तो दोनों लालच की नदी में डूब कर हाथ पाँव फेंकेंगे और दम तोड़ने को भी तैयार हो जाएगे। इनका पैसा झड़ालो, दोनों का वज़न फिर हल्का हो जायेगा।

मीर मुन्शी को यहाँ संतरा न मिला,तो धोबी के घर का रास्ता लिया। अपने को साहब का इतना मुँह लगा पिट्ठू साबित कर दिया था कि धोबी डर कर इनके कपड़े भी मुफ़्त धोता था। जाकर देखा तो धोबिन इस्त्री कर रही थी। धोबी घर पर न था।

मुन्शीजी की दिल की सलवटें अपने आप मिट गईं। वे बैठ गये। उन दिनों की याद भी क्या है ? जो सोचता हूँ, वह मुझे एक-एक

सुपने-सा याद आता है। किसका डर था वह? अब वह कहाँ है? अब कहीं नहीं है। क्योंकि हवा पलट गई है। पहले जिस बनिये को दूध में पानी मिलाने पर दूकान से उतार कर पीट दिया जाता था, जो गंवारों से भी दबता था, वह अब सरे आम चुनौती देकर पानी मिला अरा रोटी दूध पढ़े-लिखों को देता है और उन पर हिकारत की नज़र भी नहीं डालता।

क्यों?

क्योंकि उसके पास आ गया है पैसा। ए मालिक! पानी भी अगर ऐसे दूध के दाम बिकता है तो उसे दूध से भी कम कर दे, ताकि पानी को बढ़ाने को उसमें दूध मिलाया जाने लगे।

तब और अब की कहानी छोडूँ। अब नहीं, हाँ तो तब······

———

## : तीन :

सेन साहब के नये ठाठ थे। चिकने-चुपड़े आदमी थे । हमेशा अंगरेजी लिबास पहनते थे। घर पर भी देसी कपड़े न खुद पहनते थे, न किसी को पहनने देते थे। एक ही धुन के आदमी कहलाते थे। वे वेदों का अंगरेजी अनुवाद पढ़ चुके थे। कालेज में देशभक्त रहे थे। उनका एक भाई डाक्टर था। तीसरा भाई कांग्रेस में था। वह जेल भी जाता था, पर सरकार उसे हैसियत के हिसाब से 'ए' क्लास में रखती थी।

इस परिवार की यह त्रिवेणी भारत के विराट् वक्ष पर यों उपस्थित थी कि तीनों अलग थे, रुपये कमाने के जरिये अलग थे, पर खर्च मिल कर एक ही ढंग से करते थे। दो प्रकट थे ही, परन्तु बीच में अभी कांग्रेसवाला भाई अंतःसलिला के रूप में उपस्थित हुआ था। पर वे बढ़ती शक्ति के प्रतीक थे।

समय बता रहा था कि अंततोगत्वा सेन साहब आइ. सी. एस. सरस्वती बन इस त्रिवेणी में लुप्त हो जायेंगे ।

मगर मैं जानता था कि इन नदियों के मेल में अंगरेजी संस्कृति का पानी है और बहुत दिनों तक हिन्दुस्तानी इसमें गोते खायेंगे ।

सेन साहब की खासी इज्जत होती थी । आखिर वे आइ. सी. एस. थे । यह अजीब पौध, अंगरेजों ने ही भारत में आकर तैयार की थी । एक कांग्रेसी, जवाहरलाल नेहरू का कहना था कि इनको स्वतंत्र भारत में झाड़ू मार कर निकाल दिया जायेगा ।

मेम साहिबा ने चपरासी को शराब लाने भेजा था । सेन साहब को तो शराब के बिना चैन ही नहीं आता था ।

चुनाचे नीयत का खुर्दाफरोश मैं भी लार्ड क्लाइव की तरह चपरासी के साथ निकला ।

चलते-चलते क्या देखता हूँ कि चपरासी ने रास्ता बदल दिया । सीधे साहबे आलम की तरह चपरासी साहब नवाब मुहम्मद जान साहब के यहाँ पहुँचे ।

चपरासी को देख कर मुन्शीजी ने कहा, 'मिजाज अच्छे हैं ?'

'दुआ है' चपरासी गरगलाया ।

बाहर मर्दाना था । वहाँ कई लोग थे । उनमें क्या था? सभी सजे-बने थे । पान की गिलौरियां खा रहे थे । मस्त थे । बात-बात पर वहाँ सब एक दूसरे को दाद देते थे ।

अपने को इतना चैन कहाँ था ? लगे सूंघ २ कर टोह लेने कि ज़रा असलियत का भी तो अंदाज़ा करें । किधर से जायें अभी हम सोच ही रहे थे कि अचानक रास्ता खुल गया ।

फत्ते मियां को देखा तो हम फरफराये । क्या नफ़ीस और खूबसूरत लिबास पहने था वह लड़का । गोरा तो था ही, आज शायद सात

पुश्तों से रईसी में पलता चला आरहा था। उसके गालों पर बड़ी लुभावनी सुर्खी थी। वह बड़ा ही अच्छा था।

उसक साथ भीतर चला गया। बड़े कमरे में पहुँचते ही आँखें ज़रा चौंधिया गईं। वहाँ जो कुछ दिखा, बेशकीमती दिखाई दिया। छत में बिल्लौरी कांच चमक रहे थे।

दूसरी तरफ़ साज़िंदे बैठे थे। उनके बीच में एक बी जान बड़े नखरे से बैठी थीं।

क़हक़हे से मेरा ध्यान टूट गया। मैंने देखा वह एक कुर्सी पर जो मोटा-सा व्यक्ति था, डाक्टर रहीमतुल्ला था। वह विलायत-पलट था। इसलिये उसकी बड़ी क़द्र थी। अहलूवालिया इंजीनियर थे और पंजाबी उनकी बोली में बीच २ में झलक मार जाती थी। और सेठ साहब मटरूमल कानपुरी ढंग से पान चबाते, मोटे पर काले, लंबी पर गिरी हुई मूंछों वाले, इस समय सिगरेट को अपनी बीच की और अनामिका उंगलियों के बीच में खड़ी करके पकड़े हुए बार बार चुटकी भर कर सिगरेट की राख गिराने का प्रयत्न कर रहे थे।

एक गोरा-सा आदमी और था। वह एक बड़ा जमीदार था। सातवें दर्जे तक पढ़ा था, मगर बोलने में बड़ा उस्ताद था। वहीं वह जम रहा था। हरफ़न मौला दिखाई देता था।

उसका नाम था हरीप्रसाद। उसकी नफ़ासत, नर्मी के बीच २ उसकी आंखों में अधिकार की प्यासी क्रूरता ऐसी चमक उठती कि देख कर मुझे अजीब-सा लगा।

तभी जमी हुई रबड़ी आई।

हरीप्रसाद ने कहा: अब आपके यहाँ खाये लेते हैं मगर जनाब अगर बाहर खबर हो गई तो वे बिरहमन कौए नोंच नोंच कर खा ही जायेंगे।

'लाहौल बिलाक़ूवत' अहलूवालिया ने कहा, मगर सेठ मटरूमल ने

झिझक के साथ तश्तरी उठा ही ली। वे कांग्रेस में भी तो थे। छिपे तौर पर।

उन दिनों उर्दू के ही रफ़्त थे। हिंदी को सब देहाती बोली समझते थे। हिन्दी वालों पर हँसते थे।

मैं हरीप्रसाद को देखता रहा।

पर कमबख़्त की नज़र मुझ पर ऐसी पड़ी कि मैं सहम गया। एक टक देखने लगा। उसकी वह पैनी आँखें किसानों की खड़ी फ़सल को नज़रों के हँसिये से काटती थीं। मैं तो किस खेत की मूली था।

लौटा तो नवाब साहब के पास आलमबरदार, खाकसार चपरासी को उस हालत में देखा जब ईस्ट इंडिया के सौदागर अपने ऊपर से चुंगी और महसूल माफ़ करवा के अपनी फौजों के लिये रुपया मांग रहे थे।

उन्हें खुशी से इनाम दिया गया। वे सलाम करके झुके और फिर आगे आगे चल पड़े। मैं पीछे-पीछे चल दिया।

चपरासी सड़क पर जाता था, पीछे पीछे मैं जाता था। मैं देखता। हिन्दुस्तान वाक़ई गन्दा था, और लोग कुछ दबे-दबे से थे।

शराब की दूकान में एक पारसी बैठा था। शक्ल से ऐसा लगता था कि पुराना ऐयाश है। इसने हमेशा ही झूठ बोली है।

दो टॉमी बैठे थे। दोनों के पास एक एक एंग्लोइंडियन लड़की थी। लड़कियाँ खूबसूरत थीं। उनके हाथों में शराब के प्याले थे।

मैं सोचने लगा। मगर चपरासी तब तक चल दिया था। वह शराब की बोतल जेब में लिये था।

राह में मैं रुक गया। वहाँ ताड़ीखाने के सामने झुण्ड था। वहाँ कुछ झगड़ा हो रहा था। चपरासी रुक कर देखने लगा। एक बेड़नी और एक शराबी का झगड़ा था। वे आपस में जूझे थे। सिपाही आया। उसने भीड़को ठेला और बादशाही चाल से भीतर घुसा। जाते ही मौक़ा मुआयना किया।

'चलो सूहर के बच्चो ।' उसने छूटते ही शराबी को चांटा दिया और नतीजे में बेड़नी और शराबी दोनों को ही थाने की तरफ़ खेंच ले चला ।

जब मैं घर पहुँचा, सेन साहब हँसते दिखाई दिये । वे स्विटजरलैंड का किस्सा सुना रहे थे । क्या पहाड़ था! क्या शांति थी ! मेम साहिबा सुन कर मुस्करा रहीं थीं ।

बोतल खुली । फिर पी गई । सेन साहब तो आधी 'बोतल पी गये । फिर उनकी आँखों में सुरूर दिखाई देने लगा । साहब भी कम पियक्कड़ नहीं था । दोनों ने किसी बात पर ठहाका लगाया ।

खा-पीकर आखिर सेन साहब उठ खड़े हुए । उस समय नशे में उन्होंने मेम साहिबा को अजीब तरह से देखा । ग़नीमत थी, साहब भी नशे के कारण देख न सका ।

जब सेन साहब चले गये मैं जाकर सोने की कोशिश करने लगा । रात ठंडा गई ।

भोर का उजाला छिटका, मैं जागा । आज का दिन ज़रा व्यस्त ही प्रारंभ हुआ । मैंने देखा, द्वार पर गाड़ी आकर रुकी । एक आदमी उतरा । वह हरीप्रसाद था । मैंने सोचा तो यह आगया ? क्यों आख़िर ? पर सुनने की ठान कर मैं भी बढ़ा ।

'हुजूर', ज़मीदार हरीप्रसाद ने बैठते हुए कहा, 'बहुत दिनों से सोच रहा था सलाम करने चलूँ । पर गांव वाले ऐसे सरकश हो गये हैं कि बहुत मुश्किल से दबाये गये । पर हुजूर, अब वे नहीं उठेंगे । उठेंगे तो कुचल दिये जायेंगे । वे खुद तो अमनपसन्द हैं हुजूर, पर बाग़ी लोग भड़का देते हैं ।'

मेरी को देख कर हरीप्रसाद गद्गद-से उठ खड़े हुए ।

'सलाम हुज़ूर' हरीप्रसाद ने कहा । वह मुस्कराया ।

'सलाम ज़मीदार साहब !' लड़की ने कहा । वह भी मुस्कराई ।

हरीप्रसाद निहाल हो गये। शायद इस वक्त कोई दिल चीर देता तो उस गोरी लड़की की बात से बाग़-बाग़ हुआ लहू भी सफ़ेद होकर निकलता। वह कामी और लोलुप था। उसकी दृष्टि मेरी को आँकने लगी।

'हुजूर आपका तो कुत्ता ही मिल जाये।' हरीप्रसाद ने कहा।

'क्यों?'

'हजूर ने पहले वादा किया था? याद फरमाइये? कहा था न? तब हम चुप रह गये थे। सरकार को हम जैसे फ़रमाबरदारों का पूरा ख़याल रखना चाहिये।'

मुझे बुरा लगा। तो मेरे गर्भ में आने के पहले ही मेरा सौदा कर लिया गया था।

'आप बड़े वफाडार हैं' कप्तान साहब ने कहा 'आपका बात हम, नहीं टालने सकटा। कुट्टा आपको ज़रूर डेगा।'

हरीप्रसाद की बाछें खिल गईं। मैंने दिल में सोचा यह गज़ब हुआ। अब हिंदुस्तानी के घर रहना पड़ेगा।

बाहर से चपरासी आया। उसने कागज़ दिया।

कप्तान ने कहा: 'ले आओ।'

चपरासी चला गया। हरीप्रसाद सोचते से दिखाई दिये।

सेठ मटरूमल आये थे। चपरासी जब लौटा तो उन्हें साथ लाया। जरूर उसकी मुट्ठी गर्म की गई थी।

उन्होंने बैठते ही कहा: 'हज़ूर! बड़े इक़बाल से आपसे मुलाक़ात हुई। मैं आपसे उसी मामले में मिलने आया था।'

हरिप्रसाद नहीं समझे, पर मैं समझ गया था। उनके यहाँ हड़ताल हुई थी। उसमें गोली चलवा कर उन्होंने मज़दूरों का क़त्ल करवाया था।

कप्तान साहब कुछ देर सोचते रहे फिर उनका सिर झुक गया। शायद

वे उस सेठ साहब के दुतरफ़े पहलुओं पर ग़ौर कर रहे थे ।

फिर कहा: 'वैल । हम डेखेगा । पर आपने क्या किया था ?'

'कुछ नहीं हजूर । हम तो अहिंसा मानते हैं । अहिंसा से जो हो सकता है वह हिंसा से नहीं हो सकता ।'

हरीप्रसाद मुस्कराये । साहब ने हरीप्रसाद की ओर अब ज़रा भेदभरी निगाहों से देखा ।

सेठ मटरूमल की आकृति से प्रकट हुआ कि वे इस जमींदार और साहब के सम्मेलन के विरोधी हैं, अतः वे देशभक्त हैं ।

'तो फिर हज़ूर, इस मामले पर ज़रा जल्दी महरबानी करें ।' सेठ साहब ने कहा ।

कप्तान साहब ने कहा: 'सेठ साहब ! हम इस पर सोचेंगे ।'

हरीप्रसाद उठे । कहा: 'इजाज़त हो हज़ूर !'

'अच्छी बात है ।' कप्तान भी उठा ।

हरीप्रसाद के जाने के बाद सेठ साहब ने अधीर होकर धीरे से कहा 'हुज़ूर ! वह आप तो जानते हैं । । मैंने इरादा किया है मिसी बाबा के नाम पर शहर में एक पार्क बनवा दूँ । आपको तो एतराज़ नहीं ···,

मैं सुन न सका । बाहर आगया । कुछ देर खड़ा रहा, फिर ज़रा अहाते के बाहर की तरफ़ आगया ।

बिलकुल मेरी शक्ल का एक कुत्ता मेरे सामने खड़ा था, मगर उसका सीना इतना चौड़ा न था ।

'अरे !' किसी ने कहा । 'बिलकुल एक-से हैं ।'

चपरासी ने गुज़रते हुए कहा: 'इसीका बच्चा है । धोबिन की कुतिया से हुआ है ।'

'सब विलायती है, पर सीना उतना चौड़ा नहीं ।'

'तो वह कुतिया विलायती थोड़े ही थी ।'

'मारेगा देसी ही ।'

'नहीं जी ।' चपरासी ने मुझसे इशारे के स्वर में कहा—लहस, लहस···

मैं झपटा । पकड़ कर नयेवाले को कलामंडी दी । एक मियां जी की बटेर घूम रही थी । फुदक कर दूर बैठ कर देखने लगी ।

नया वाला भी जीवट का था, साला जूझ गया ।

'शाबाश !' चपरासी ने कहा ।

मैंने झपट्टे से उसे काटा । उसने पैंतरा बदला । दोनों एक साथ गुर्राये ।

दूसरा आदमी बोलाः 'मारेगा यही ।'

'नहीं जी,' चपरासी ने कहाः 'बेट्टा ! कप्तान का माल खाया है, इस वक्त साले पिट गया तो बड़ी थू करायेगा ।'

मुझे नया जोश आया । जो काटा तो नयेवाले की दुम से लंगोट बन गया । कै कै चिल्लाया । दांत निकल आये । औंधा होगया ।

चपरासी ने छुड़वा कर कहाः 'शाबाश !'

मैंने गर्व से उस सुहराब को रुस्तम की तरह देखा ।

---

## : चार :

आखिर कप्तान साहब ने विलायत जाने की ठान ही ली। 'मेरी' ने कहा: जैक का क्या होगा ?

कप्तान को हठात् याद आया। बोले: 'उसका नाम क्या है ?'

मेम साहिबा ने कहा: 'हरीप्रसाद !'

हरीप्रसाद के आते ही मेम साहिबा खुश हो गई। हरीप्रसाद ने झुकके सलाम किया। मेम साहिबा ने मुस्कराकर कहा: 'वैल ! जमींडार साहब ! साहब ने आपको यह कुट्टा डेने का ख्वाहिश किया है।'

हरीप्रसाद झूम गये।

एक-एक करके सब चले गये तो हमारे गले में एक जंजीर बांधदी गई और हमें हरीप्रसाद के सुपुर्द कर दिया गया, हरीप्रसाद ऐसे खुश नज़र आते थे जैसे कोई मुक़द्दमा जीत गये हों। अंग्रेज जा रहा था। उसका कुत्ता उससे ले लेना क्या कोई हँसीखेल था ?

हरीप्रसाद चले तो अकड़े हुए थे । चपरासी ने आकर सलाम कियाः मुबारक हज़ूर !

उसे एक रुपया दिया, सोलह सलामें न लीं, उनके बराबर की एक ली । वह हमें ले चला । हम मजबूर थे ।

बंगले से बाहर निकलते ही बाहर घोड़ागाड़ी दिखाई दी । साईस आगे बैठा था । पीछे दो रफ़लदार थे ।

ज़मींदार ठाठ का आदमी था । मैं देख-देखकर हैरान था । जब वह गाड़ी में बैठकर निकला तो उसे सड़क पर दोनों तरफ़ से सलामें मिलती थीं । उस वक्त हमें देखकर सड़क के कुत्ते ईर्ष्या से जल उठे होंगे ।

हरीप्रसाद का शहर का मकान भी बड़े जोर का था । बहुत बड़ा था और बहुत ही सजा हुआ भी था ।

बीचके कमरे में झाड़फानूस लटक रहे थे उम्दा क़ालीन बिछा हुआ था, चमकदार भारी फ़र्नीचर था ।

रात को नंगी तलवारों का पहरा पड़ता । उनके अपने सिपाही थे, जिन्हें वर्दी पहनाई जाती । उनकी क़वायद कराई जाती । पूरे रजवाड़े के ठाठ की नक़ल की जाती । गोया रो-रो कर ताज़िया उठाया जा रहा था ।

सुबह से शाम तक यों ही बीते जाते थे । कोई काम नहीं था । मस्ती का आलम पुरज़ोर था । ज्यादातर वहाँ विलास के किस्से चलते या फिर शान के तम्बू ताने जाते, जिसमें खान्दानी रुतबे का ऊँट इन्सानियत के अरब को हटाकर जगह बना लेता ।

घर के सामने ठाकुर साहब रमेशसिंह रहते थे । हरीप्रसाद और रमेशसिंह में अदावत थी । क्योंकि रमेशसिंह एक दबंग आदमी था । अलीगढ और लखनऊ के नवाबों तक उसकी चर्चा थी । वह ऐसा मदहोश था कि उसे फूंकते वक्त खुदा की भी याद नहीं रहती थी ।

रमेशसिंह का खान्दान आज से अस्सी-पिचासी बरस पहले बहुत अमीर था। अंग्रेज़ों के खिलाफ़ लड़ कर वह उस गौरव से घट कर बहुत कम रह गये थे। पर उन्हीं दिनों दो कौड़ी के हरीप्रसाद के पुरखे बन बैठे साहब की खिदमत कर करके। वे वक्त को पहचानने वाले थे। हरीप्रसाद के बाप चालाक आदमी थे और रमेशसिंह के बाप ऐयाश। पर हरीप्रसाद इस पीढ़ी में हार चले थे। वे रमेशसिंह जैसी खुशामद साहब की नहीं कर पाते थे। रमेशसिंह गदर के समय की देशभक्ति को इस वक्त की खुशामद से ढंकना चाहते थे। इनपर जुर्म था नहीं। खून के बफ़ादार थे। पर आपस में हमेशा टक्कर बनी रहती।

दुश्मनी इतनी थी कि एक की घोड़ी को दूसरे के घोड़े से बछेड़ा लेने में जो तकरार उठी तो अंग्रेज़ कमिश्नर तक मामला पहुँचा। औरतों तक में चर्चा चली। यह कैसे हो सकता है? खान्दान की तो नाक कट जायेगी। साहब कमिश्नर मन ही मन हँसा। उसने दोनों को बुलाया। दोनों बड़े जोश से पहुँचे पर वहाँ पहुँच कर हिम्मत पस्त हो गई। कमिश्नर ने खान्दानी रुतबों की तारीफ़ की और सुलह करादी। घोड़ा मर गया। घोड़ी बिक गई तब चैन हुआ, तब से दोनों नर जानवर पालते थे, मादा में ही तो तौहीन होने का खतरा था।

मैं यहाँ खूब मलाई खाता। साहब ने जो न खिलाया वह मैंने यहाँ खाया। यहाँ खाना दिन भर चलता था। एक बादाम का हलुआ खाते, तो दूसरे ज़मींदार पिस्ते का खाते। दोनों के नौकर अक्सर आपस में बातें किया करते थे। दोनों की चर्चा होती।

१: 'हमारे सरकार ने तो कमाल कर दिया।'

२: 'क्यों?'

१: 'अबके महफ़िल में बनारस तक से रंडियाँ बुलवाई जा रही हैं।'

२: 'सो क्या हुआ ? परसों ही कलकत्ते वाली हमारे यहाँ से गई है।'

१: 'गई होगी। वह जोश कहाँ था उसमें ?'

२: 'हमारे यहाँ जो साधू महाराज आते हैं वे कीर्त्तन करने वाले हैं।'

१: 'अभी नहीं। अगली नौ दुर्गापर हमारे यहाँ बड़ा भोज होगा।'

२: 'तनख़्वाह मिल जाती है तुम्हें ठीक टैम पर ? हमें तो दो महीने से नहीं मिली।'

१: 'यार यही अपना हाल है। पर रईसों की पोल में क्या कमी है ?'

२: 'नहीं तो कौन टिकता !'

१: 'वैसे मालिक के लिये जान हाजिर है।'

२: 'सो तो अपना भी हाल है।'

फिर वे अलग होजाते। कभी जब मिलते तो हर पहलू से अपने मालिक मालकिनों की चर्चा करते। उस वक़्त बड़े अजीब रहस्य मिलते।

मैं उनकी बातें सुनता तो अक्सर हैरान हो उठता। क्या भीतर ही भीतर यह लोग इतने जघन्य थे ? क्या जीवन सचमुच इतना विकृत था ? पर मैं क्यों कहता ? मैं भी तो पोल में ही दिया हुआ था। मुटिया रहा था जैसे किसी देसी रियासत का तहसीलदार रिश्वतें खाकर फूल जाता है।

मुझे जनानखाने में जो मज़ा आया वह बाहर कहाँ था। वह शर्म, वह घुसपुस, वह अतृप्त वासना। भीतर कूँआ, ऊपर बिछी शराफ़त की चटाई। मैं इसे न कहूँ तो भला।

पण्डित रामचरन के लंबी मूंछें थीं। उन्होंने गांव की एक बनैनी से कुछ जुल्म कर दिया था। रामचरन हरीप्रसाद के रिश्तेदार थे। बनिया रोता हुआ आया तो ज़मीदार साहब ने डांटा कि तुमने औरतों को इतना बदमाश कर दिया है कि वे गांव के रंडुओं को फुसलाने लगी हैं। बनिया चला गया। दिल में खटका होगा।

अदावत हुकूमत से पैदा होती है। जब एक दूसरे पर अत्याचार करता है और जो अन्याय करता है, उस अन्याय को अपने शब्द-जाल में छिपाने की भी संग मे सामर्थ्य रखता है, तो निर्बल के हृदय में धूँआ उठता है। वह धूँआ एकदम नहीं जलाता। वक्त से ही उसमें लपट निकलती है, जो सब को जला देती है।

उन्हीं दिनों एक कछवाहे के तीन लड़के बेगार में लाये गये। वैसे बेगार यों न थी कि तीनों को रोटी दी जाती थी। तनख्वाह दो दो रुपये थी, बहुत थी। उनके बापको गांव में जमीन दे दी थी कि वह शिकमी काश्त करले।

सबसे छोटा सबसे बदमाश था। जब मेरे लिये दूध दिया जाता तो वह पत्थर के कटोरे में डाला जाता। उसमें रोटी मींड़ दी जाती। वह क्या करता कि कटोरा पहले खूब धो लेता, फिर उसमें दूध ले आता। रोटी उसमें मींड कर खाता और मुझे सूखी रोटी देता। मुझसे जल कर मुझे मारता, मैं लाचार था क्या करता! एक दिन किसी ने देख लिया। हरीप्रसाद ने उस लौंडे को चोरी करने के कुसूर में हंटरों की मार लगाई कि वह लौंडा, घिध्घी बंध गई, पर डर कर रो भी न सका, चार दिन उसे बुखार आया।

मेले के दिन आगये। 'बासोढा' होने वाला था। इस मेले में खूब लोग आते थे। अतः हम सब गाँव गये। उस मेले की आमदनी हरीप्रसाद के पास आती। बासोढे में कई कन्याओं को भोजन कराया जाता।

हरीप्रसाद के मामा का लड़का तर्राट था। महाराज जो रसोई करता तो घी चुराता। मामा के बेटे को यह मालूम था। इधर लड़की देखी उधर चोरी का अपराध पड़ा। मामा का बेटा जानता था, महाराज की लड़की की हिम्मत ही कितनी? और तिस पर चोर। ठीक बासोढे के भोज के पहले मामा के बेटे ने उसे एकांत में पकड़ कर चोरी की सजा

दी। महाराज की कन्या का उद्धार हो चुका था। पर उसके बाद तुरंत उसे उसनें घी का भरा कटोरा लाकर दिया। कन्या रोती रही। तब मामाके बेटे ने उसे समझाया। न मानी, तो मारा। पर डर के मारे वह जोर से रो भी न सकी। बेटे का मन पसीज गया। उसने कहा: 'रो मत।'

'मैं सरकार से कहूंगी।'

बेटा डरा, कहा: 'क्यों ?'

लड़की ने घूर कर कहा: 'क्यों ? सब भूल जाओगे।'

लड़का भाग कर बाग़ में जा सोया। घर ही नहीं रहा। उसने वक़्त को टाल जाना ही बेहतर समझा।

मेला खत्म हो चुका था।

हरीप्रसाद के पास शिकायत आई। महाराज रो दिया। हरीप्रसाद ने कहा: 'तुझसे पहले कहा था, लड़की जवान हो चली है। उसकी शादी करदे। फिर कोई कुछ करे, तेरी ज़िम्मेदारी नहीं होती।'

महाराज अपनी बेटी से कोई कुछ करे की बात को ज़हर के घूंट की तरह पी गया। फिर हरीप्रसाद ने कहा: 'तू क्यों फ़िक्र करता है। मैं उसका ब्याह करवा दूँगा। समझा। जो होगया उसे भूल जा। लड़का नादान है। उसे डाटूँगा; पर बेटी भी चंचल होगी। समझा! जा।'

महाराज लाचार चला गया।

रात होगई थी। बत्ती जलरही थी। मैं अपने लिये सबसे अच्छी जगह खोजता फिर रहा था। सामान अभी अच्छी तरह से जम नहीं पाया था। मुझे यह बेतरतीबी निहायत नापसंद थी। पर मैं करता भी क्या ? चुनांचे कुछ देर एक दरी पर सोया। नींद नहीं आई तो टहलने लगा। बाहर गया, भीतर चला और फिर मैं चौंक उठा। आधी रात थी।

मैंने कुछ फुस-फुसाहट-सी सुनी तो रहा नहीं गया।

दबे पांव जाकर देखा हरीप्रसाद चिंता में बैठे थे। सामने धरती पर बिछे फ़र्श पर बूढा और छोटा कारिंदा और सरबराकार बैठे थे। वे शायद कुछ बातें कर चुके थे। तभी एक गंभीरता उस समय कमरे में छाई हुई थी। मैं ने सुना।

'शहर के बाहर कारखाना खुलेगा कैसे?' जमींदार के चेहरे पर चिंता दिखाई दे रही थी। उन्होंने सबको घूरा।

बूढ़े कारिंदे ने कहा: 'सरकार, उसके बगल में अपने खेत हैं। अपना बाग़ है। और बाग़ में आपकी आरामगाह है।'

छोटे कारिंदे ने कहा: 'उससे तो सरकार बनिये के दिमाग़ बहुत चढ़ जायेंगे। फिर क्या वह बदेगा किसी को?'

सरबराकार बोला: 'माल बरसता है सरकार, तभी बनिया बड़ी-बड़ी रिश्वतें देते भी नहीं झिझकता।'

हरीप्रसाद देखते रहे।

'हुजूर इस वक़्त ध्यान दीजिये।' बूढ़े ने कहा।

मटरूमल! व्यपारी! रईसों से टक्कर!

यह जुर्रत!

'मैं साहब से कहूँगा।' हरीप्रसाद ने कहा-'पर यह नया है। पुराने वाला ज्यादा अच्छा था। वह रईसों की ज्यादा क़द्र करता था। पर यह भी ठीक ही होगा। रईसों की क़द्र तो यह भी करेगा ही।'

'कितने दिनका सेठ है!' बूढ़े ने कहा-'सरकार! यों नुच जायेगा। यों!' उसने उंगलियों पर अंगूठा फेरकर दिखाया।

अपने को दिलचस्पी नहीं आई। भीतर पहुँचे, देखा मामा का बेटा लौट आया था। सामने महाराज की लड़की खड़ी थी।

'क्या करवा लिया तैंने?' मामा के बेटे ने कहा।

लड़की खिसियाई खड़ी रही।

लड़के ने फिर कहा: 'आपही कहा तैंने। न कहती तो किसी को

खबर भी न होती। पर तू तो बेवकूफ है। अपनी बात खोल और दी तैंने? क्या होगया अब?'

लड़की ने चिढ़ कर कहा: 'सरकार तरफदारी कर गये, पर भगवान तो सब देख रहा है! वहाँ तो नहीं बच जाओगे?'

'वहाँ क्या हो जायेगा?'

'पापका फल पाओगे।'

'मैं अकेला पाऊँगा। तू नहीं पायेगी? मर्द का क्या? पाप तो औरत का होता है।' लड़की चिंता में पड़ गई। लड़के ने उसका हाथ पकड़ कर कहा: 'जब फल मिलेगा तो देख लेंगे। अभी क्या है?'

'मैं चिल्लाती हूँ। छोड़ दो मुझे......'

मामा का बेटा हँसा। कहा: 'मुझे धमकी दिखाती है?'

तभी हरीप्रसाद की पगध्वनि सुनाई दी। लड़का छोड़ कर भाग गया। हरीप्रसाद ने लड़की को वहाँ देखा तो डाँटा—'छिनाल! यहाँ क्यों खड़ी है तू? खुद बदमाशी करती है, दुनिया को नाम धरती है?'

लड़की थर-थर कांपने लगी और भीतर डरती हुई चली गई। पर उसने देखा: सामने ही हँसता हुआ मामा का बेटा खड़ा था।

---

## : पाँच :

अप्रैल का महीना आ गया था। गर्मी पड़ने लगी थी। नये कोंपलों से पीपल ढँक गये थे। आम पर कोयल बोलती, वैसे लू की शुरुआत होने वाली थी। खेत कट चुके थे, शहरों में कालिज बन्द होने वाले थे। गंगा यमुना के मैदान में हवा गर्म होने लगी थी। रईसी के बरखिलाफ था सब। चुनाँचे हरीप्रसाद मंसूरी आगये।

मंसूरी के ठाठ देख कर तो मुझे अपने बापदादों के मुल्क की याद हो आई। क्या सुन्दर प्रदेश था! हम एक मकान किराये पर लेकर ठहरे। पर हरीप्रसाद का वक्त होटलों में ज्यादा कटता। पातिव्रत औरतों के लिये था, मर्दों के लिये रुतबा और ऐश जन्मसिद्ध अधिकार था।

जिस होटल में हम ठहरे थ उसी में सर करीमभाई मुहम्मदभाई का खान्दान ठहरा था। कमरों के एक सूट में अंगरेज औरतों के संरक्षण में बच्चे रक्खे गये थे, और दूसरे सूट में सर करीम की माँ और बीबी और

बीबी की बड़ी बहिन रहती थीं। बीबी की उम्र छत्तीस थी, पर वह जब रंग पहन ओढ़ कर आती तो छब्बीस बरस की-सी दिखाई देती थी।

इस औरत को देख कर हरीप्रसाद विचलित हो उठे। उन्हें क्या ख़बर थी! संग बैठ कर वह शराब पीती, ऐश से सिगरेट का धुँआ उड़ाती। उसके पास दौलत का यह हाल था कि होटल के मैनेजर ने उसके कमरे में आठ सौ रुपये के किराये के तीन इटैलियन तैल-चित्र टाँगे थे।

वहाँ एक कायस्थ साहब थे ललिताप्रसाद साहब सक्सेना। वे बड़े उस्ताद थे, फ़ौरन भांप गये। बोले : 'यार हरीपरशाद! यह औरत हाथ की नहीं।'

'क्यों?'

'उसे दौलत की कमी नहीं।' लिहाज़ा दोनों ने उसे छोड़ा।

मिस बनर्जी के आते ही नई फुहार-सी आई। कालेज की चुलबुली वह अंगरेजी बोलती कि हरीप्रसाद अधमुंदी आँखों से विभोर होकर देखते। अपने को भूल-भूल जाते।

हरीप्रसाद कमरे पर लौटे तो उन्होंने बोतल निकाली, और उनका अब क्या शौक़ था? खूब उर्दू के शेर रटते। वे अंगरेजी के ज्ञान की कमी को शायर बन कर ढँकते। वैसे बड़े सलीस थे। काम चलाऊ अंगरेजी तो वे जानते ही थे। और रटते रटते पूरी बोतल पी जाते।

वे सो गये। ख्वाब में भी शायद वे बनर्जी को ही देख रहे थे।

और शाम के क़हक़हे जब होटलों की खिड़कियों से निकल कर भागते तो गरीब पहाड़ियों के घरों पर अंधेरा बन कर, सीलन बन कर छा जाते। खटमल बाहर निकल आते। हवा में बादल छा जाते। मैं देखता। आदमी की दुनिया में इतना बड़ा भेद था।

होटल में लड़ाइयों के पुराने निशान देह पर धारण करने वाला एक कर्नल भी था, जो दिल खोल कर खर्च करता था। वह अंगरेज था। वह

लंबी मूंछों वाला लंबा-तड़ंगा आदमी सुबह उठते ही शराब पीने लगता। अपनी शराब की इस लत के कारण वह रईसों में बड़ा जबरदस्त आदमी माना जाता था। लोग उससे मिलकर कृतार्थ होने को लालायित रहते। पर वह मालिक था। किसी को दो कौड़ी को नहीं पूछता था। उसे अपनी शराब से ही फुर्सत नहीं थी। वह देशांतर में घूमा हुआ था और साम्राज्य का अंकुश-सा मंसूरी के पहाड़ को दबाये खड़ा था। उसको देख कर मुझे अपने पूर्वजों की याद हो आती जो क्लाइव के पास रहते थे।

शाम को बड़े कमरे में जुआ होता। उस समय बिजलियों के प्रकाश में कोना कोना जगमगाता। वहीं मैंने उन उच्च वर्ग के लोगों को देखा जहाँ देखो तो धर्म का अम्बार, पर इतनी दुश्चरित्रता थी कि बयान नहीं की जा सकती। मुफ्त शराब पीने की नई तहजीब के नाम पर बाप अपनी बेटी की जवानी के लासे में नये-नये रईस नौजवानों को चिपकाते। अगर शिकारी तेज़ होता तो परिंदे को काट देता, अगर परिंदा तेज़ होता तो लासे को संग ले उड़ता।

कभी-कभी हरीप्रसाद लाइब्रेरी जाते। यह मंसूरी का ऊँचा स्थान था। वहाँ इस क़दर अंगरेज़ियत की जूती चटकती कि मैं हैरान हो जाता। जमींदार मूंछों पर ताव दिये अचकनें या सूट पहन कर घूमते। लड़कियों का काम शायद अपनी जवानी की नुमाइश करना ही था। और मेम लोग पीपी कर झूमतीं। राजा लोग अपने रिक्शों में बैठ कर निकलते, मूंछों पर ताव देकर मुस्कराते।

और लौटते तो कैमिल्स बैक रोड पर जोड़े ही जोड़े दीखते। देवदारु की छायाओं में पुरुष स्त्री को धन के बल पर ख़रीदता। वे औरतें फैशन की दीवानी थीं। उन्हें पैसा चाहिये, क्योंकि कल फिर उन्हें बार में बैठ कर शराब पीनी थी। अपने होठों को रंगना था। यह जिंदगी इतनी मामूली हो गई थी कि लोगों ने उस पर ध्यान देना छोड़ दिया।

वहाँ किसानों के लोहू से धन के देवता का तर्पण होता था। गर्मी की लू की चपेट से जो खून पसीना बन कर जिस्म से टपकता था, वह मसूरी में बादल बन कर मनरंजन करने वहाँ इकट्ठा हो जाता था और इतना बड़ा असाम्य भी आनन्द से चला जा रहा था।

हरीप्रसाद और ललिताप्रसाद जिस दिन एक हुए मेरा माथा ठनका। ललिताप्रसाद ने कहा : "यार ! इंतजाम तो किया है।"

"कैसा माल है ?" हरीप्रसाद ने पूछा।

'नया।'

एक नुकची नाक का पहाड़ी आ गया था।

'शाम के बाद।' ललिताप्रसाद ने कहा।

वह चला गया।

'तैयार रहना।' ललिताप्रसाद ने हरीप्रसाद से कहा।

रात हो गई थी। हरीप्रसाद लौटे तो चेहरे पर झेप थी। ललिताप्रसाद ने कारण पूछ ही डाला। हरीप्रसाद ने बताया। उन्होंने लेडी करीम का हाथ पकड़ा। उसने वह डाँटा कि सारा नशा हिरन हो गया। ललिताप्रसाद हँसे। बोले—'मियाँ बड़ा पैसा है उसके पास। साल में ६ महीने पैरिस रहती है। और तीन बच्चे हैं उसके!'

हरीप्रसाद करीमभाई की बीवी की डाँट से हरे हो चुके ज़ख्मों को अब मिटाने की ख्वाहिश में थे। बोले : 'बुढ़िया है साली।'

'और क्या ?'

'पहले क्यों न कहा ?'

'मुझे ही कौन पहले पता था !

तभी पहाड़ी आ गया।

पहाड़ी आगे आगे चल रहा था। उसके पीछे यह दोनों बरसाती पहने जा रहे थे। कुछ देर पहाड़ पर उतरना पड़ा। फिर चढ़ने लगे। रिम-झिम बूँदें गिर रही थीं।

हरीप्रसाद ने कहा : 'कहाँ चलना है ?'

ललिताप्रसाद ने कहा : 'शायद आ गये।' फिर मुझे देखा। कहा : इसे भी ले आये हो ? काम देगा।'

मैंने देखा वह एक पन्द्रह साल की मासूम लड़की थी। उसके चहरे पर सहमा हुआ डर था। पहाड़ी रुपये लेकर हट गया था।

'तुम जाओ।' ललिताप्रसाद ने कहा 'पहले।'

जब हम लौटे तो ललिताप्रसाद ने कहा : 'मुझे कुछ बीमारी है न···'

जैसे कोई बात नहीं। मेरे कान खड़े हुए।

हरीप्रसाद ने कहा : 'इलाज करालो। यह साली पहाड़िनें बड़ी बदमाश होती हैं। अक्सर बीमारियाँ फैलाती हैं····'

ललिताप्रसाद ने सिर हिलाया।

हरीप्रसाद बच गये थे यही तो कमाल की बात थी। ऐसा कब-कब होता है। लो जहे क़िस्मत! मासूम पहाड़िन को जहर चढ़ चुका था। पर हरीप्रसाद की राय थी कि ललिता परशाद जैसा शरीफ़ आदमी दुनिया में कम होता है।

जब हम लौटे तो दूसरी लहर दौड़ी। चुनाव आगये थे। हर जगह एक ही बात थी। एक ओर कांग्रेसी खड़े हुए थे। दूसरी तरफ़ जमीदार लोग थे। हरीप्रसाद ने एक आदमी को खड़ा किया। रमेशसिंह ने दूसरा। वे अभी तक इस सदस्यता को, असेम्बली को, घरेलू झगड़े का ही दूसरा रूप समझते थे। वे यह भूल गये। एक नई शक्ति खड़ी हो गई थी। वह जनता थी, जो उन्हें अंग्रेजों का पिट्ठू समझती थी।

हरीप्रसाद और रमेशसिंह में फिर चमक आ गई। दोनों के सामने सवाल था अपनी-अपनी आन का। दोनों ही दिन-रात एक किये दे रहे थे। मोटरों में धूल फांकते गांव गांव घूमने लगे और अब गांव वालों से लल्ला भइया होने लगी।

सेठ मटरूमल कांग्रेसी थे। वे कांग्रेस को मदद दे रहे थे। पर कांग्रेस का रुपया बहुत कम उठ रहा था। शहरों से स्वयंसेवक गाँवों में जाते। गांव के लोग भी पहले से ही कांग्रेस को चाहते थे।

गांव के लोग इकट्ठे होने लगे। वे परस्पर बातें करते।

'किसे दोगे वोट? ज़मीदार को?'

'वह लगान छोड़ देगा?'

'कांगरेस को दो भैया। सुराज लायेगी।'

बड़े-बड़े नेता चक्कर मारते और लोगों के ठट्ठ लग जाते।

नेता देश की आज़ादी की दुहाई देने। ज़मीदारों को कांग्रेसियों से नफ़रत थी। पर गांव वाले उन्हीं की सुनते।

हरीप्रसाद का ख़र्चीला हाथ उठा तो रुका नहीं। सारी जायदाद उठाकर गिरवी चढ़ा दी। वह जुनून था, आन की बात थी। घर पर कढ़ाव चढ़े थे। पूरी दिन-रात उतरती थीं। ठट्ठ के ठट्ठ गांव वाले खाने आ बैठते।

लड्डू बनाने वाले हलवाइयों की मैली देह देखकर भी कोई उन्हें बुरा नहीं समझता था। कहते थे वे इतना घी खाते थे कि पसीने की जगह घी निकलता था। वे आंच के पास बैठे रहते।

चमरिया गुलकन्दी गुलाब का फूल थी। वह भी पूरी मांगने आ खड़ी होती। उसे देख कर पलकें टकटकी बाँध जाती थीं। वह मुस्करा कर उल्लू बनाती थी।

हलवाई रामलाल और महाराज दोनों चोरी का दूध घी खाकर चाक थे। उनके पास भण्डार था और वे हरीप्रसाद के खास आदमी थे। आदमी को आदमी नहीं गिनते थे।

चंपा बामनी आई थी सो हलवाई रामलाल ने उसका हाथ पकड़ कर भण्डार में ले जा कर कहा था: 'भरले। चाहे जितना घी भरले' बामनी शर्मा गई थी। पर किसी को मालूम नहीं हुआ और अब

महाराज चेते। गुलकन्दी के पास जाकर कहा: 'क्या लेगी? घी?'

गुलकन्दी ने गाली देना शुरू किया। बात फैल गई। हरी प्रसाद के पास बात पहुँची तो झल्ला कर बोले—'यह मजाल हो गई है चमारों की! वह जूते लगवाऊँगा कि दुरुस्त हो जायेंगे।'

यह बात भी बाहर पहुँची। कांग्रेसियों को मौका मिला। उन्होंने भड़काया और बात इतनी स्पष्ट थी कि किसी से भी छिपाये न छिपी। हरीप्रसाद का पाँसा कमजोर रहा।

मेरी तबियत खराब हो रही थी। मैंने हरीप्रसाद के भांजेको अकेला देखा तो उसके पांव पर सिर रखा। कृष्णदास ने देखा। कहा: 'बीमार है?'

मैंने दुम हिलाई।

वह बोला: 'शहर ले चलना पड़ेगा।'

मुझे मोटर में रखा और शहर के जानवरों के अस्पताल में मुझे ले गया। मै परेशान था।

अस्पताल का डाक्टर हमें देखकर निहाल हो गया। उसने मुझे पुचकार कर कहा: 'कोई डर नहीं। ठीक हो जायेगा।'

कृष्णदास को संतोष हुआ। कहा: 'डाक्टर सा'ब! मरेगा तो नहीं?'

मेरा ऑपरेशन हुआ।

धीरे-धीरे मै चंगा हो गया पर तभी चुनाव का नतीजा निकला। गांव वालों ने डट कर जमीदारों का खाया था और उतनी ही कांग्रेस को वोट डालीं थीं। हरीप्रसाद ने सुना तो धक्का लगा। मालकिन ने उन्हें समझाया। पर वे कैसे समझते? सारी जायदाद गिरवी रखी थी। उनको कोई रोशनी दिखाई नहीं दे रही थी। वे इस सदमे को बर्दाश्त नहीं कर सके।

हरीप्रसाद चल बसे। पहले ज्वर आया। वैद्यों ने डटकर ठगा। भस्म बनाये और रोगी के उदर को भस्म किया। हकीमों ने सोने की ज़मीनपर तैयार किये हुए लोहे को खिलाया, जाने क्या-क्या न किया। डाक्टरों ने फ़ीस के पंजों से गला घोंट दिया।

घर में कुहराम मच गया। औरतों की दिल को हिला देने वाली रोने की आवाज़ उठी। मैं भी उदास हो गया। एक कोने में सिर झुकाये-सा उदास बैठ गया। स्वामी की मृत्यु ने मुझे भी दारुण वेदना दी। पर मुझ पर किसी ने भी ग़ौर नहीं किया। मैंने सोचा वह कितना ईमानदार चित्रकार था, जिसने बुद्ध निर्वाण का चित्र बनाया था। मेरे किसी पूर्वजने जो शोक मनाया था, वह उसने उस चित्र में अंकित किया था। सारे वातावरण को उस कुत्ते ने जो वास्तविकता दे दी थी, वह क्या सहज में भूलने योग्य बात थी। और यहाँ मुझे देखा भी नहीं गया?

हरीप्रसाद का बच्चा छोटा था। उसकी परवरिश का सवाल था उस अबोध बालक को क्या खबर थी! उसने सोने की पाटी में जन्म लिया था धरती पर सोने को।

नये आने वाले रिश्तेदार छा गये। वे शायद भले के लिये आये थे। इंतज़ाम करना उनका ध्येय था। पर उनके भीतर हिंस्र भेड़िये थे जो प्रतिहिंसा चाहते थे। हरीप्रसाद तो शेर की तरह रहे थे, और उन्हें कुत्ता बनाकर रखा था और दबा दिया था। वही विद्वेष अब उनके दिलों में सुलग रहा था। अब वे हरीप्रसाद की जायदाद को बरबाद करना चाहते थे, और अपनी उस कमीनी जलन को बुझाना चाहते थे। डट कर मिठाइयाँ उड़ाते। ऐश होते और बात-बात पर अहसान जताते।

मुझे निकाल दिया गया।

रमेशसिंह दोस्त हो गये। वे आये। कुछ भी हो, ठाकुर थे।

बैठे, कहा: 'हमारी अदावत ख़त्म हो गई। अब सब ठीक है न ?'

कारिंदों ने बातें बताईं। रमेशसिंह ने चौंक कर कहा: 'अच्छा यह बात है ? बिल्ली जलेबी की रखवाली करने आई है ? मैं साहब कमिश्नर से मिलकर बात पहुँचा दूंगा।'

तसल्ली हो गई।

मैं रमेशसिंह के चला गया। क्या करता ! कहीं रोटी का तो मुझे इंतज़ाम करना ही था। दो टुकड़े मिल जाते।

नौकर कहता: 'कहो बेटा ?'

मैं सिर उठाता।

'आगये ढंग पर ?'

मैं झेंपता।

हरीप्रसाद की बीबी हैज़े से मर गई। फिर घर में जो परेशानी आई उसका कोई क्या बयान करे। रमेश के यत्न से सरकार ने रिश्तेदारों को तो निकाल दिया, पर कोर्ट ऑफ़ वार्ड्स के मैनेजर ने खाना शुरू किया। सरकार का यह महकमा पुलिस से भी ज्यादा बुरा था।

बूआ ने बच्चे को संभाल कर पाला। क्या करतीं ?

मैं एक दिन लौटा।

'अरे जैक !' बुआजी ने कहा: 'तू कहाँ गया ?'

मैंने दुम हिलाई।

'तू गांव चला जा न ?'

मैंने मंजूर कर लिया। गांव चला गया।

यहाँ जो मैनेजर था, उसका भी नाम रमेशसिंह था। मैंने सोचा उसे ही पटाया जाये। पर वह खूसट दो ही काम करता था। रुपया बटोरना और औरतों को फुसलाना। उसने गांव के नौकर वे रखे जो चोर और रिश्वतों के साझेदार थे, और औरतें वे रखीं जो

पहले से बदनाम थीं, चलन की ढीली थीं। रमेशसिंह वैसे घंटों पूजा करते थे। रोज़ रोज़ पापों का प्रायश्चित करके भगवान को भी ठगने में सिद्धहस्त थे। रमेशसिंह मुझे बहुत प्यार करते तो क्यों? उनकी पूजा का ही ऐसा आडम्बर था कि उधर मैं फटका और उन्होंने मेरी कमर पर डंडा पटका।

एक दिन बोलेः 'और खर्चों में यह कुत्ता भी है ?'

'सरकार निकालें इसे।' एक नौकर ने कहा। वह असल में रात को छिप कर गोल कमरे में कुछ चुराने जा रहा था, तब रात को मैं उसे देख कर भोंक दिया था।

चुनांचे भटकन शुरू हुई।

नौकर हँसा।

'डंडा देना साले में।' मैनेजर ने कहा।

अपने गांव की सड़कों पर घूमते हुए मुझे शर्म आई। पर और कोई चारा ही सामने न था। फिर राजा राम और राजा युधिष्ठिर की याद आई। वे भी ऐसे ही दर दर भटकते फिरे थे। पर उनके लिये कितने रोने वाले थे, अपने लिये कोई न था। चलते-चलते मैं बहुत दूर आ गया।

यह दूसरा गांव था। इस गांव में वह रौनक नहीं थी, क्योंकि यहाँ कोई ज़मींदार रहता नहीं था। यहाँ का ज़मींदार दूसरे गाँव में रहता था। पर कहीं मुझे सिर तो छिपाना ही था।

पूनम का चांद निकल आया था। मैं उसे देखकर रोया और उस रात घूरे पर जाकर सो गया।

---

## छः

मैंने क़दम रखा तो सुना: 'अब क्या होगा ?'

'कुछ नहीं ।'

'तू कहाँ रहेगी ?'

'जहाँ हूँ ।'

वह एक मेहतर का घर था । कुछ मर्द और औरत वहां बैठे कुल्हड़ों में दारू पीरहे थे ।

'तू लेगा ?'

'बस, अब नहीं ।'

कोई नया क़ानून पास हो गया था । क्या था वह तो मैं नहीं जान सका था । शायद कोई मेहतर किसी इम्तहान के लिये चुना जा रहा था । वह बड़ा सरकारी अफ़सर होने वाला था । उसी की खुशी मन रही थी । मुझे देखा तो सब खुश हो गये ।

मेहतर की बड़ी बहिन करीब पैंतीस साल की थी । वह शहर के पागलखाने में नौकर थी ।

वह मुझे ले गई । रोज़ वह पागलखाने चली जाती तो मुझे भी अपने साथ ही ले जाती । लोग मुझे देखते और मेहतरानी के भाग्य से जलते ।

इस नई दुनिया को मैंने देखा तो मज़ा आ गया । कोई बकवास करता था । कोई गाना था । कोई बोलता ही न था ।

मेहतरानी के होंठ और दांत पान से काले-से पड़ गये थे । सुबह शाम चाय जरूर पीती । जब गाती तो गजल गाती और उसको अपने ऊपर यह गर्व था कि वह बड़ी सुन्दर है, और अक्लमंद तो इतनी ज्यादा है कि उसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता । बातचीत में उर्दू के लफ्ज़ों का प्रयोग करने का प्रयत्न करती और मेम लोगों की तरह पतली तीखी आवाज़ में बात करती । अस्पताल की नर्सें, जिन्हें वह मिससा'ब कहती, उस पर मेहरबान रहतीं, उसे इनाम दे दिया करतीं क्योंकि कुछ उनके ऐसे काम भी थे जिन्हें मेहतरानी बड़ी चतुराई से कर दिया करती थी । गांव की कोई औरत आती तो मेहतरानी उससे ऐसे बात करती जैसे खुद मेम सा'ब हो । गांव की देहातिनें अस्पतालों की अंग्रेज़ हवा से वैसे ही डरती थीं ।

एक दिन मैंने चक्कर लगा कर रोगी देखे ।

यह एक वकील था । यह कोई पागल नहीं लगता था । ठीक बात करता था । समझदार था । खाता पीता था । पर कभी कभी जिरह करके अकेले में कहता था, 'साला मोतीलाल नेहरू ! हुँह । तेज बहादुर सप्रू ! प्रिवी काउंसिल तक जाऊँगा, प्रिवी काउंसिल तक'... बस यही उसका पागलपन था ।

डाक्टर भी कम पढ़ा लिखा न था । इसे वह दहशत थी कि

कोई मिला और फ़ौरन उसकी नब्ज़ पकड़ ली और कहा: 'जबान निकालो । उसने देर की तो इसने तुरंत निकाली और 'ऐं ऐं' करके कहा : 'देखो '' ऐसे, ऐसे ''''

बाकी वह ठीक था ।

मैं सोचता कि इस दुनिया में विकृत बुद्धि आते हैं, जिन्हें समाज के प्रहार कुण्ठित कर देते हैं । यह बिचारे सदमे उठा उठा कर जब लाचार हो जाते हैं तो इनका दिमाग़ राह दे जाता है । शायद अच्छे समाज में दिमाग़ की खराबी आदमी को कम से कम होगी ।

रमझो बड़ी चतुर औरत थी ।

नर्स कहती : रमझो !

'जी मिस सा'ब।' नर्स कुत्ता मांगती ।

'अये हये सुलेमानी', वह कहती और मुस्कराती- 'आप क्या करेंगी सरकार इसका । मेरे पास ही रहने दीजिऐ न ?'

मैं कान भी न झपकाता । जानता था कि रमझो बड़ी उस्तानी हैं, वह मेरे दाम खड़े करना चाहती हैं । उन्हीं दिनों पागलखाने का डाक्टर एक क़ैदी के पागल होने की खबर सुन जेल जाने को तैयार हुआ ।

चुनांचे हम जेल के दौरे पर गये । रमझो भी थी । हम बाहर के लोहे के फाटकों को पार करके भीतर गये ।

क़ैदी सूनी निगाहों से देख रहा था । नौजवान था । वह असल में एक राजनैतिक बंदी था । उस पर किसी का रोब ही नहीं पड़ता था । डंडा बेड़ी डाली तो भी वह किसी से न दबा । तब जेल का अनुशासन बिगड़ने लगा । चिंता हुई । सरकार ने ढील देखी तो पुराना जेल सुपरिंटेंडेंट दूसरी जगह भेज दिया और तबादला होकर नया आया । इस नये वाले का मिजाज गिद्ध का सा था ।

उफ़ ! कभी भी उस दुनिया को मैं नहीं भूल सकता । नये वाले

ने उस क़ैदी को एकांत कोठरी में बंद करवा दिया । दो महीने रखा । नौजवान पागल हो गया था । दो महीने तक उससे किसी ने भी बात नहीं की । पहले वह गाता, फिर अपने आप बात करता, यहाँ तक कि फिर वह चिल्लाने लगा और फिर वह कराहता, गाली देता, रोता··· और एक दिन वह हँसा, इतनी ज़ोर से हँसा कि लोगों के दिल दहल गये ।

चोर, उचक्के, डकैत, ख़ूनी, समाज के गलित हृदय, यहाँ थे । और अधिकांश धन से मजबूर, ऊँच नीच के समाज के विरुद्ध ग़लत बग़ावत करने वाले । शराबी, अपने को भूलने वाले । और यौन वासनाओं की विकृतियों के शिकार ···और फिर देश की आज़ादी चाहने वाले लोग ···वे भी तो पापी थे सरकार की निगाह में··

मैं थर्रा उठा । जब डाक्टर अपने काम में लग गया, मैं और रमझो बाहर आ गये ।

जेल के क़ैदी बाग़ में पानी दे रहे थे । एक बड़ा बाग़ इस तरह सरकारी अफ़सर के लिये रखा जाता था ।

एक मोटर रुकी ।

अमलों में कुछ फुसफुसाहट हुई । मैंने देखा यह अमले, यह नौकर कठोर और मतलबी थे, बेदर्द और रिश्वती थे । मुंशी जी तो क़ैदी को छोड़ते वक्त जब उसका पुराना सामान और धन लौटाते तो खोटे सिक्के उस पर चला देते । यह उनका एक अलग रोज़गार था । अपने पड़ोसके लोगों से रुपये को चौदह आने में ले लेते थे । बड़े मिलनसार मशहूर थे । मोटर से एक व्यक्ति उतरा ।

ठेकेदार मटरूमल को देख कर ही मैं पहचान गया ।

अच्छा ! यहाँ ?

महतरानी देख रही थी । मैं आगे बढ़ा । मटरूमल के पास तक निडर होकर चला गया । जाकर उनके पांव पर सिर रखा ।

रमझो ने कहा : 'अरे हट ! सेठ जी नाराज़ हो जायेंगे।'

सेठ खुश होकर बोले–'यह कुत्ता किसका है ?'

रमझो समझ गई। सेठ डाँवाडोल हैं। सेठ ने फिर मुग्ध दृष्टि से कहा। तब रमझो बोली : 'सरकार एक साहब दे गया था।'

मटरूमल ने कहा : 'हमें देदे।'

'ले लें सरकार। मेरे घर की चौकीदारी न सही, आपके घर की कर लेगा।'

'कितने का है ?' मटरूमल समझे। व्यापारी जो थे।

'सरकार आप जो ठीक समझें ?'

सेठ ने उसे तीस रुपये दिये। वह झुककर सलाम करने लगी।

सेठ मटरूमल की कोठी बड़ी आलीशान थी। बाहर की तरफ़ दूर दूर तक लॉन था। उस पर बड़े बड़े अफ़सरान की पार्टियाँ होती थीं। सेठ लड़ाई का चन्दा खूब देता था। और दूसरी तरफ़ काँग्रेस को भी खूब चन्दा देता था। दोनों घोड़ों पर इस सहूलियत से चढ़ता था कि पता ही न चलता था। इसका राज़ यह था कि वह अंग्रेजी घोड़े की दुलत्ती बचाता था और कांग्रेसी घोड़े के मुंह में घास भरता था।

कोठी के बाहर एक बनिया नई जायदाद खड़ी कर रहा था। वह खोमचा लगा कर आया था और आज ठाठ से दूकान बनी थी। घर बन रहे थे।

पण्डित सालिगराम आते और सेठानी को धरम की बातें सुनाते। सेठानी को दुपहर का सन्नाटा हुआ और फिर धर्म के बिना चैन नहीं, सो पंडित आते और कृतार्थ करते।

पर सेठ मटरूमल के पास स्वामी ब्रह्मानन्द अद्वितीयानन्द आया करते थे। वे इतने धार्मिक थे कि कभी स्त्रियों के पाँवों से ऊपर नजर नहीं उठाते थे। सेठानी उन्हें हर इतवार को खिलातीं अपने हाथ से। और जब सेठ चला जाता तो उनके चरण दबातीं। उस समय स्वामीजी की

नजर ऊपर चढ़ने लगती थी ।

एक ही जिन्दगी में मुझे कितने ख्वाब देखने होंगे । क्या यह एक अजीब खेल-सा नहीं हो रहा है ? पर अब सेठ मुझे भूल गया था । वह एक शौक था खरीदने का, पूरा हुआ । अब भूल गया । नौकरों में हलचल मच गई ।

सेठ का चौथा लड़का कोडूमल विलायत से लौटा था । वह एक नम्बर एयाश था । सूट पहनता । और शाम को विलायती नृत्य देखने सदर जाता जहाँ शराब पीता, या फिर कोठों पर जाता । सेठ का पुण्य बहुत बढ़ गया था, सो उस छिपे माल का जाहिर पुतला अपने बाप की तंगदस्ती को खुले हाथों खर्च करने लगा । वह पढ़ा लिखा था । हिटलर का नाम अक्सर इज्जत से लेता । वह कहता: 'गांधी ? गांधी से क्या काम चलेगा ? कुछ नहीं : हिटलर चाहिये, हिटलर ।'

पर हिटलर के चाहने पर भी हिटलर की जगह रोज एक नई ऐंग्लो इंडियन या देसी लड़की को मोटर में बिठा कर घुमाता ।

उन्हीं दिनों जंग छिड़ गई । नफ़े बढ़ने लगे । भारतीय व्यापार बढ़ चला ।

कोडूमल ने फोन उठाया । फिर चिंता से रख दिया ।

'क्या है ?' उसकी मां ने पूछा ।

'मां ! जापानी बढ़े आ रहे हैं ।'

'फिर ? भाव गिरेगा ?'

'नहीं, तेज होगा ।' उसने मुस्करा कर कहा ।

मुझे रतनलाल के साथ गांव जाना पड़ गया । रतनलाल एक मुंह लगा नौकर था । वह सेठ मटरूमल के गांव के खेतों पर जाता था । मुझे भी साथ ले चला । जाते वक्त मैंने देखा सालिगराम पण्डित कह रहे थे: बहूजी ! अब लक्ष्मी घर में आजानी चाहिये । बेटे का हाथ रंगदो ।

पंडित को संदेह से देखकर ललाइन ने कहा: क्यों ? जल्दी क्या है ?

'लाला छोटे हैं कुछ ?'

'छोटे तो नहीं। संबंध तो बहुत है। फलाने मील वाले है न ? उनका घर कैसा है ?'

'बहुत अच्छा।'

'लड़की जरा मोटी है, कहते हैं।'

'कचौड़ी ज्यादा खाती होगी,' पंडित ने कहा- 'बिल्कुल तुम्हारी सी है...'

पण्डित की जहरभरी निगाह की धारा में भींग कर जब ललाइन चमकी तो कटार की तरह, जरा पतली होती तो लफलफाती, मगर अपने मुटापे से मजबूर थी।

---

## : सात :

शहर की गाड़ी अजूबा होती है। भक भक झक झक करती हुई आई और दूर ही से सीटी दी। चारों तरफ एक भगदड़ मच गई और पानी वाला चिल्ला उठा- हिंदू पानी ! हिंदू पानी !

रेल में मध्यवर्गीय लोग भले ही कहा करें कि देखिये अभी यहाँ हिन्दू और मुस्लिम पानी का ही झगड़ा चल रहा है, पर फिर भी परंपरा चलती चली जा रही है। शहर के लोग जब सफेद कपड़े पहन लेते हैं तो प्रकट में यह भेद करते हुए झेंपते हैं, किन्तु जो अंगरेजी नहीं पढ़े, जो अब भी ऊँची पगड़ी बाँधते हैं, उनमें यह भेद निरंतर चलता है जैसे परंपरा का टूटना, एक आसान काम नहीं।

स्टेशन छोटा था। इसका नाम था छहरन। वास्तव में यह नवीनता की आबादी का रूप इसका अपना नहीं था। इस पुरातन नीरवता में यह कोलाहल का एक क्षण बिलकुल अजीब था। गांव

वाले यही कहते थे कि रेल की पटरियों के गड़ने ही भूतों का भी इधर से उधर जाना रुक गया है। लोहे से अंगरेज़ों ने हिन्दुस्तान की छाती को दाग दिया था। भूत इधर से उधर चलें या नहीं, इंसान तो चलते ही थे। जिस तरह लड़ झगड़ कर किसानों ने ज़मीन को बदतरी से टुकड़े-टुकड़े करके बाँट दिया था कि उस पर एक तो खेती कठिनता से होती, होती तो भरपूर न होती, उसी तरह आदमी ने भी अपने आपको संसार में ऐसे ही बांट लिया था। 'सिगल' वाला सिग्नल गिरा कर अपनी ऊँची लोहे की सीढ़ी से उतर आता, और छोटे स्टेशन के कारण स्वयं ही झंडी लेकर खड़ा हो जाता। बाबू लोग इस बात को अचरज से देखते। वे क्यों जानें कि जब रेल आती है, जब कोलाहल होता है तभी यहाँ जीवन की लहर दौड़ती है, कंपन होता है, जैसे मरते हुए आदमी की पलकें एक बार पल भर को तेज इंजक्शन पाने से कांप कर खुल जाती है।

स्टेशन मास्टर एक काम ही नहीं करते। वही अपने असिस्टेंट थे, वही गुड्स क्लर्क थे। लेकिन जब रेल चली जाती तो स्टेशन सुनसान हो जाता। एकाध साधू नीम की छाया में सोया करता और दूसरी ओर फ़ेंसिंग के पास लगे नल और हौज़ के बगल में कोई हमारा गरीब भाई आँख मींच कर चुपचाप पड़ा रहता। नीम हवा से हिलता। उसके चुपचाप खड़े रहने में एक रूमानी माहौल था, और देसी भाई की भावना का उसकी छाया से अपना एक ऐसा मिलाप था जो कोई शीघ्रता से नहीं पहचानता।

स्टेशन की वह इमारत छोटी थी। पीछे खेत थे, खेतों के पीछे दूसरे खेत थे, इसी तरह करीब तीन मील की दूरी पर गांव था। गांव का नाम नरहर था। गांव छोटा ही था, पर स्टेशन के पास होने के कारण उसमें एक थाना था। थाना भी बड़ा नहीं, उसमें थोड़े से सिपाही रहते थे। उन सिपाहियों के ऊपर एक दरोगा था। पन्द्रह-

पन्द्रह गांवों पर एक सिपाही काफी साबित होता । वही सब दंगे फ़िसादों को ठीक कर लेता । वह इलाके का राजा था, उसके ऊपर की गई शिकायतें मुश्किल से सुनी जाती थीं क्योंकि सरकार की नियम-प्रणाली ऐसी थी कि गरीब की बात नहीं सुनने का क़ानून था ।

उधर स्टेशन की लाल रोशनी जब रात के अंधेरे को चुनौती देती हुई आकाश में चमकने लगती, गांव पर अंधेरा छाया रहता । सरेसाँझ लोगबाग सो जाते, और वह लाल रोशनी खतरे की बड़ी सी सूचना, किसी के खून से भींगे सीने की तरह, रेल के तूफान के आगमन को प्रकट करती, जिसके आते ही सन्नाटे की फ़सल एकदम झुक जाती, निकल जाने पर फिर सिर उठा देती और इसमें प्रतिभा का गर्व न था, सत्ता की विवशता थी, फ़सल का क्या ! चाहे जो काटले, पर काटने से मरती नहीं, क्योंकि उसकी जड़ें ज़मीन में होतीं । कटते में कई बीज वहीं के वहीं गिर जाते । खेत साफ़ लगता, यहाँ तक कि किसान और बैल धरती को खूंद-खूंद देते । पर पानी गिरते ही फ़सल उठ आती । अमरता का यह दंभ भला हो या बुरा, इसमें एक अदम्य साहस था, जिसे आज तक कोई भी नहीं कुचल सका ।

सुनहरी छायाएँ जब छप्परों को पीला करके आग सी लगा देतीं, कच्चे पथों की धूल ठंडी हो जाती, और उन पर ऊंघती चाँदनी फैल जाती, पुरानी गढ़ी में, खंडहरों में हवा गूंजती, आनन्द की मादक छलना कभी भी कठोर वास्तविकताओं को झुठा नहीं पाती ।

नीम, बबूल, कहीं बया के घोंसले, मुझे अच्छे लगे । तभी ज़मीदार की सघन अमराई में से कोयल की आवाज़ कुहू-कुहू करती पत्तों में गूंज उठती । राह के निर्जन में आले में हनुमान की मूर्त्ति धारण करने वाले एक कोठरी से मंदिर में घोटमघोट, गेरुए वस्त्र पहनने वाला साधु उठता और सामने के कूप पर जा बैठता । प्रतीक्षा करता कि कोई गाड़ी इधर से गुज़रे, किसान उतर कर पैर छुएँ, पानी, हुक्का पियें, बरगद

की छाया में आराम करें। बैल ऊंघें।

सांझ की सुनहली बेला में पनघट पर भीड़ हो जाती। स्त्रियां ठट्ठा करतीं। मर्दों के आने पर फुसफुसा कर चूड़ियां बजातीं। और अनेक जातियों के अलग अलग कुओं पर यह परंपरा एक होकर चलती।

कभी कभी ज़मीदार की फुलवारी से बाँसुरी की तड़पती धुनि उठती। पनहारिनों में कोई जवान मस्तानी गाती और अपनी जवानी को देखकर गर्व से मुस्कराती, चलते में ठुमका मारती, गदराती।

गांव की हवा सर्द, पुरवैया के गीलेपन से तर, पत्तों में घुसती जैसे औरतों के बालों में जूंएं। छप्परों का ढेर जैसे सूखी काली कीचड़ पर सूहर की पीठ के कड़े बाल।

जब चीलगाड़ी (हवाई जहाज़) उड़ती तो छैला चौंक कर ऊपर देखते। औरतें बच्चों को गोद में लिये देखतीं, विस्मय के माध्यम से प्रसन्न होतीं। इतिहास के यह दो संस्करण भारतीय जीवन की एक संघर्षमयी समस्या थे।

गांव की नीरवता एक बक्स के समान थी। बात का प्रारंभ और अंत एक परंपरा था। मुझे यह गांव आनंद के आलोक में और भी अंधेरा दिखाई दिया।

गांव सदियों से बहती हुई धारा के किनारे खड़ा एक बहुत बड़ा पेड़ था। यह रहस्य का अंधविश्वास बन कर पड़ा था। कहा जाता है कि यम देवता के सामने एक बहुत बड़ा चक्र घूमता रहता है। उसमें अनगिनत मनुष्यों के लेखे-चोखे की चिट्ठियां लटकी रहती हैं। कायस्थों के आदि पुरुष चित्रगुप्त जी उन्हें पढ़ते हैं। परंतु हिंदुस्तान के लाखों गांवों के भाग्य की चिट्ठी एक है, वही सैकड़ों बरस से घूम रही है। स पुराने वृक्ष में अनेक विषैले जीव जंतु हैं। मजबूरी है, पंछी इन्हीं का भोजन बनने के लिये बार बार अंडे देते हैं, बार बार हाहाकार करते हैं। ज़मीदार यहां भूमि है, किसान फ़सल है। नमक का कर्ज़ बाबा न चुका

सका, न बाप, आपनो यों ही गये, बंगाले का जादू ही हाथ न आया। गांव की हलचल तब उठती जब कोई चमको नैनतिरछे कर निहारती, मनई को पट्ठ कर देती, देखने वाला डगभरा घर चल देता ·· बधर्रा वह हूह न मचा पाता, अनेक मनुष्य····घटनायें····

व्यक्तिगत सत्याग्रह, युद्ध, सन् बयालिस की ज्वाला, दुर्भिक्ष की कठोर यातना, मैं क्या करूँगा उस सबको याद करके!

दिन ऐसे निकल गये जैसे एक स्वप्न होता है। इस बीच में गांव की हमजात औरतों के पीछे मेरे अनेक देहाती भाइयों से खून खराबा हुआ, पर मेरे पीछे ज़मीदार था। मैं ज़मीदार का कुत्ता था, चाहे जिसे काटता, ज़मींदार की शान मेरी उठी पूंछ में थी।

पर······

उसके बाद पता चला कि मटरूमल ने गांव बेच दिया। मेरे सामने कोई रास्ता नहीं रहा। मैं उसी के साथ शहर आगया जो रतनलाल मुझे ले गया था, लौटते समय उसने भी मुझसे निगाहें फेरलीं।

सड़क पर अकेला चला। दिन था। एक ने देखा तो आवाज़ दी-लेना, लेना····

नाली के नीचे से दूसरे ने पूंछ तान कर हौंक दी: जाने न पाये।

मेरे मुँह से दांत निकले, नुकीले। पूंछ तो मेरी दब गई थी, पर भयानक लगता था। जानता था भीड़ में अकेला पड़ गया हूँ। जो ज़मीदार मेरी हुकूमत के खंभे थे, वे खुद टूट रहे थे। यह बनियों और हलवाइयों के पट्ठे इस वक्त जोर पर थे। पर अभी उनमें भी इतनी हिम्मत न थी कि सीधे मुझ पर टूट पड़ते। यों ही जोर आज़माइश हो रही थी।

मौका पाकर मैंने एक को दबोचा। वह चिल्लाया कि सब बिखर गये। मैं भागा। जानता था, यहाँ रहना बड़ा कठिन है।

और शामके धुंधलके में चलता रहा, चलता रहा। जिस जगह

मैं आगया था, कुछ साधू बैठे चिलम में गांजा पीरहे थे। कुछ राजपूताने के लोग सिर पर बड़ी पगड़ियां बांधे स्टेशन जा रहे थे। पास ही मरघट था। चिताओं से धूंआ निकल रहा था।

मैं देखता रहा। सोचता रहा। दुनिया के आखिर तो कितने ज्यादा पहलू हैं। माजरा अजीब सा यह क्या है?

और मैंने देखा आसमान में अब बादल इकट्ठे होने लगे थे।

---

## : आठ :

ऊब कर चित्रकार काले रंग से कूंची रंग कर बने बनाये चित्र पर फेर कर उसे मिटादे, जो मोहक सौंदर्य प्रारंभ हो वह हठात् आँखों की भयावनी पुतली निकाल कर घूरने लगे, तो ? टेढ़ी मेढ़ी रेखाओं का सामंजस्य संतोष नहीं देता। परिणाम में कोई प्रतिदान नहीं, जैसे व्यर्थ का निरर्थक तूफ़ान, जिसकी चेतना अहं तक सीमित है, बाहर नहीं। जीवन ऐसा श्रीहीन होगया जैसे पीछे के आकाश में कटीले चांद के गिर कर लुप्त हो जानेपर कोई ऊसर पहाड़ी दिखाई देती है, जिसकी शोभा अपने में नहीं, अपने पूर्ववृत्त की सुषमा में निहित होती है। सारा जीवन एक निस्सीम शून्य, जिसमें अपने डैने चलाकर वायु में कंपन भरने वाला एक भी पक्षी नहीं।

उस समय कहीं घंटाघर से घंटे बजने की आवाज़ आने लगी। वह आवाज़ ऐसी थी जैसे ताँगे के घोड़े की टपाटप किसी अनगढ़

पथरीली सँकरी सड़क पर गूंजकर पास आती जारही हो। जैसे किसी सख्त चौड़े माथे पर बालों की घुंघराली लट कांप रही हो। कील का सा शब्द गड़ा, जैसे नीले शीशे पर सफ़ेद कागज़, जैसे पानी पर तैरती हुई बत्तख़।

मेरे दिल में एक घुमड़न हुई, मसोस हुई, फिर सब ऐसे खोगया जैसे हरी भरी धरती से नज़र अचानक शून्य की ओर उठ गई, जिसकी निरवधि निस्सीमा में केवल एक घुटा हुआ स्वर उठता है, जो धीरे धीरे बुदबुदाया करता है, कुछ नहीं है, कुछ नहीं है····

सड़क पर एक आदमी जा रहा था। सड़क पर व्यक्ति का वाह्य एक भिन्न वातावरण सृजन करता है, जहाँ वह अपने को सबसे अधिक महत्त्व देता है। आतंकित तो मैं था ही। उसके पीछे चलने लगा। कैसी थी यह विभीषिका कि अपने ही निर्णयों पर अविश्वास की तरलता छाने लगी, ऐसी जैसे कठोर पर्वत के पाषाण में से एक सोता निकला, दरार में से पानी चूने लगा, फैलने लगा, पर वह पत्थर के भीतर नहीं जा सका, पानी था, बह गया, और मूलोद्गम को इस सबसे कुछ नहीं था। वह जाने किस किस जलन की पिघलने थी कि रिसती चली गई।

सड़क पर निविडांधकार था जिसकी व्यापकता एक एक तृण के नीचे सरक कर बैठ गई थी। हवा क धक्के से जो अंधेरा हिलता वह अपने साथ लौटते समय शून्य के द्वार से अनंग भय को खींच लाता, जैसे अजगर की सांस ने आकर्षण किया था।

नदी के किनारे मांझियों का कोलाहल सुनाई दे रहा था। पेड़ अब तूफ़ान में सरसराने लगे थे। अंधकार स्याही की भांति गीला गीला सा पुत गया था। कभी कभी बिजली चमक उठती और फिर मांझियों के लड़कों का स्वर सुनाई देता····हेई हेई····और फिर शब्द घहरता जैसे विराट् मरु भूमि पर महाकाल धीरे धीरे पूंछ फटकार रहा था।

बिजली की चमक में लगा सामने विकराल बरगद अपनी दैत्याकार भुजाओं को हिलाता, पत्तों रूपी जबड़ों को चलाता, होठों पर जीभ फेरता सा किसी की राह देख रहा था। और वह बीभत्सा अत्यंत डरावनी हो चली। बरगद एक विशाल मकड़ा हो गया और हवामें पैर हिलाने लगा जैसे जो भी उसके पास जायेगा वे पैर उसे पकड़ कर अपने सूखे खोखले में बंद करके रख देंगे और फिर वह रक्त मांस चाट कर हड्डियां उठा कर फेंक देगा। हवा की सांय सांय में पेड़ ऐसे थे जैसे किसी प्रचण्डाघात ने रोमिल काले भालू को क्रुद्ध कर दिया हो और वह अपने पिछले पांवों पर खड़ा होकर फूत्कार कर उठा हो। फुंकारती नदी की लौटती लहरें घोर नाद-कारी बाणों की लहराती वर्षा करके सांप की तरह अकुला कर विक्षुब्ध ढीली प्रत्यंचा के समान टंकार उठती थीं। और माँझियों का गीत जैसे यौवन का ऊर्ज्जस्वित वेग पत्थरों सा टकराता, गंभीर नाद हृदय को स्फुरण से कंपित करता, थर्राता, झूमता हुआ तूफ़ान पर बिखर रहा था। चारों ओर पुती हुई स्याही और कभी कभी वह तांबे के रंग की सांपिन सी बिजली आस्मान में पेट ऊपर करके फरफराती और उन बादलों की घनी पर्तों में छिप जाती। वैसे ही एक बार फिर डसी हुई सी हवा नशे में झूमती बेहोश होने के पहले चिल्लाती ठुमकती हुई भाग उठती और गीत के स्वर पानी में डूब कर बोझिल होकर ऐसे निकलते जैसे किसी श्यामा के लहराते बाल भीग गये हों। और निर्मम लहरों का आवेग पुकार कर कहता था: ठहर जाओ मुझे पत्थर से टकरा लेने दो, चाहे मैं टकरा कर फेन फेन होकर बिखर जाऊँ, सदा के लिये समाप्त हो जाऊँ।

देखते ही देखते सरसराती हवा ने अपने डैने ताड़ के पत्तों की तरह खड़खड़ा कर फैला दिये और एक विराट् गरुड़ की भांति अपने भारी पंखों को चलाने लगी जैसे अब वह महाशून्य में उड़ जायेगी और फिर समस्त पृथ्वी ऐसे झनझनाती हुई थर्राने लगेगी जैसे कोई पंखों की चोट से आहत महानाग कुंडली खोले बार बार क्रुद्ध होकर अपना विषभरा

फूत्कार छोड़ देता हो। झमम पर बिजली कड़कने लगी और नकारे पर गूंजती किसी महासंग्राम का आवाहन करती दिगंतों में आलोड़ित विलोड़ित होने लगी।

मैंने देखा कोई लड़की भी उस अंधकार में चली जा रही थी। उन्मुकता से मैं उधर ही चला गया। मैंने देखा वह भयभीत थी। पुरुष के पांवों की गंभीर पगध्वनि अब ओर निकट आ गई थी।

तभी वृक्षों की घनी हरियाली में उस निर्जन में बच्चा रो उठा। लड़की के रोंगटे खड़े हो गये, एक दीर्घ रव करता हुआ पक्षी फट फटाया, फिर उड़ा। वह बड़ा सा था। उसकी चोंच और पंजे चमक रहे थे। वह चक्कर लगा कर उड़ा और फिर किसी कोने से गर-गलानी-सी घुटन सुनाई दी और तूफ़ान का ठोस अट्टहास हवा पर तैर उठा।

लड़की जोर से चिल्ला कर भागी। पुरुष की पगध्वनि तेज़ हो गई। अचानक लड़की गिरी। मूर्छित हो गई। हवा बहुत तेज़ हो गई थी। पुरुष ने उसे गोद में लिटा लिया था। लड़की ने आँखें खोलीं।

लड़के ने कहा: डरो नहीं। मैं भूत नहीं हूँ। आदमी हूँ।

लड़की कांप रही थी। लड़के ने कहा: 'डर नहीं लड़की। इस मर-घट में अकेली क्यों चली आई है तू? चारों तरफ़ वही चमगादुर, और यह देखा तूने सोने की चोंचका पक्षी? यह मरघट की हड्डियों के फ़ौसफोरस से कैसा चमकता है अंधेरे में।' और फिर जैसे वह स्वयं ही बातें करने लगा- कालिदास ने रघु की सेना के हाथियों की जंजीरों का भी रात में जड़ी बूटियों के स्पर्श से चमकना लिखा है।

उसकी बात समाप्त होने के पहले ही पेड़ पर कोई रोया। लड़की कांप गई। पुरुष ने हँसकर कहा: पेड़ पर उल्लू रो रहा है।

लड़की बैठ गई ।

'चोट लग गई ?' लड़के ने कहा ।

'नहीं, तुम कौन हो ? मेरा पीछा क्यों कर रहे थे ?'

'तुम्हारा पीछा ? मैं मौत का पीछा कर रहा था ।'

लड़की खीझ उठी । 'मौत ? मौत क्या मुझसे मिलती है ?'

'मौत भी औरत ही है । पर तुम इस अंधेरी रात में क्यों घूम रही हो ? बताती नहीं न ?'

'मैं इतनी छोटी नहीं जितनी तुम समझते हो ।' लड़की ने चिढ़ कर कहा ।

'अच्छा, धनी घर की लगती हो। फिर तुझे क्या दुख था ?'

'तुझे क्या ?' लड़की ने खिसिया कर कहा ।

पुरुष हँसा । सचमुच वह भयानकता से हँसा । उसने उसका हाथ मज़बूती से पकड़ कर कहा : यह मरघट और तू ....

लड़की को भय से पसीना आगया । बिजली कौंधी । पुरुष उठ गया ।

'सुनो ।' लड़की ने पांव पकड़ कर कहा ।

'क्या है ?'

'मुझे अकेली छोड़ कर न जाओ ।'

'क्यों ?'

'मुझे डर लगता है ।'

'पर तू मुझे बताती नहीं न ?'

'बताती हूँ । बैठ जाओ ।'

पुरुष बैठ गया । कहा- 'तो बता ।'

'मैं मरने आई थी ।'

'क्यों ?' फिर कहा- 'तुम्हें भी मौत बुला रही थी ।' जिंदगी भी आज अजीब हो गई है । मैं समझता था कि सिर्फ़ मैं दुखी हूँ ।

लेकिन तुम्हें मरने की क्या जरूरत आ पड़ी।

'मेरे पिता जी, मेरी शादी की बात चला रहे थे। उन्होंने मुझे बहुत प्यार से पाला है, लेकिन मैं अनजान आदमी से विवाह नहीं करना चाहती। इसलिये मैंने सोचा जिंदगी ही खत्म कर दी जाये।'

'बस! तुम्हारे दिमाग़ में कुछ फ़ितूर मालूम देता है।'

'और तुम्हारे कल पुर्जे ठीक है!'

'मेरी बात और है। मैं चित्रकार हूँ। गरीब हूँ। लेकिन गरीबी मुझे हरा नहीं सकी है। मुझे एक सूनापन खाये जारहा है। मुझे लगता है, यह जिंदगी''''मैं कुछ नहीं कर सका।

बादल जोर से गरजा। पानी बरसने लगा था। दोनों एक उल्टी पड़ी नावके नीचे घुस गये। मैं भी घुस कर पीछे के कोने में बैठ गया। पुरुष ने मुझ पर प्यार से हाथ फेर कर कहा: अच्छा! आप भी यहीं है?

मैंने दुम हिलाई। फिर पुरुष ने कहा: मेरे दिल का तूफ़ान बाहर आगया है।

एक बार भयानक गर्जन हुआ। योजनों तक गूंजा।

'मैं अनुराग हूँ, पुरुष ने कहा: तुम?

'सुनयना।'

ठंडी हवा के कारण लड़की काँपने लगी थी। अनुराग ने उसे अपना कोट उतार कर ओढ़ा दिया। लड़की कृतज्ञ हुई। अनुराग ने सिर खुजाकर कोट की जेब में हाथ डाला। लड़की चौंकी। अनुराग ने सिगरेट निकाली। लड़की हँस दी। वह सिगरेट पीता रहा। लड़की न अँगड़ाई ली, वह लेट गई। सो गई। नदी का पानी धीरे-धीरे शांत होने लगा। कहीं कोई जंगल में बांसुरी बजा रहा था। मैं भी सो गया।

सूर्योदय हुआ। चिड़िया चहकी। सुनयना जागी। अनुराग सो

रहा था। वह उसे गौर से देखती रही। फिर उसने उसे जगाया।

दोनों उठे। मैं अनुराग के साथ चला। अनुराग मुझे देखकर हँसा। थपथपाया। बोलाः मैं ही तुझे युधिष्ठिर मिला था?

मैं समझा नहीं। अनुराग के घर पहुँचे। वहाँ उसका एक कवि मित्र सुधाकर था। सुनयना की मुलाकात कराई गई। सुधाकर रात भर अनुराग को ढूंढता रहा था। सुधाकर ही अब सुनयना को अपनी मोटर में घर ले गया। अनुराग ने कहाः मेरा बोझ तो हल्का हो गया।

सुनयना बड़े बाप की बेटी थी। उसी ने बताया कि उसका बाप बहुत रोया था। जब उसने सुना कि वह नदी में डूब मरने गई थी, वह कांप उठा था। सुनयना अनुराग के पास बार बार आने लगी। अनुराग उसी तूफ़ान का चित्र बनाने लगा था। सुधाकर आ गया, वह अनुराग को ज्यादा समझता था। वह सुनयना को इसलिये अनुराग के पास से ले जाता कि अनुराग के काम में व्याघात न पड़े। सुनयना का पिता सुधाकर से मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ।

उस दिन सुधाकर ने सुनयना से कहाः अनुराग नहा रहा है।

सुनयना तस्वीर देख रही थी। कह उठीः कितनी सुन्दर है! उसका हृदय सुन्दरता की खोज में रहता है। जब मैं उन्हें देखती हूँ तो अजीब-सा लगता है, एक अनजान-सा डर लगता है। ऐसा लगता है जैसे मैं किसी पहाड़ के सामने खड़ी हूँ, ज्यों ज्यों सिर उठा कर देखती हूँ, उस पहाड़ की चोटी ही दिखाई नहीं देती।

'अनुराग को मैं जानता हूँ, सुनयना। वह झील की तरह गहरा है।'

'आप मुझे उनके घर पर रुकने क्यों नहीं देते?'

'वह काम जो करता है।'

'बुरा न मानते होंगे?'

'वह कभी इन बातों पर ध्यान भी नहीं देता।'

वे चले गये । मैं कुर्सी पर सो गया ।

सुनयना सुस्त रहने लगी । एक दिन द्वार बंद था । सुनयना खिड़की से कूद कर अनुराग के कमरे में आगई । वह चौंका ।

'तुम ? सुनयना ? द्वार क्यों नहीं खटखटाया ?'

'तुम काम में लगे थे न ?'

अनुराग सोचने लगा था। मैं खिड़की पर बैठ गया । उनमें क्या बात हुई मैंने तब सुना जब अनुराग कह रहा था : सुधाकर मेरे लिये जिंदगी से भी ज्यादा प्यारा है ।'

'तो हम दोके सिवाय यहाँ आता ही कौन है ?'

'मैं किसी को बुलाने नहीं जाता सुनयना । जो सुधाकरके पास जाते हैं, वे उसके पैसे के दोस्त हैं, और मेरे पास है ही क्या जो कोई मेरे पास आये ? तुम आती हो यह तुम्हारी कृपा है । सुधाकर और मेरा कोई मुकाबिला नहीं है । वह कवि है, दूसरों को गाकर रिझा सकता है । मेरे चित्र केवल मुझसे बोलना जानते हैं ।'

'आप बुरा मान गये ?'

'मैं जानता हूं, दुनिया की कोई ताकत मुझे सुधाकर के बारे में गलतफ़हमी नहीं दे सकती । मुझे उनकी हर उन्नति में प्रसन्नता मिलती है । जिन चीजों को वह पसंद करता है, या जो उसे पसंद करते हैं, वे सब मेरे लिये अच्छे हैं । मैं उनसे निबाहना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ ।'

रात अंधेरी थी । अनुराग सुनयना को छोड़ने चला । मैं भी संग चला । पिता मिले तो सुधाकर के दोस्त अनुराग को देखकर प्रसन्न हुए । अनुराग को कुछ शायद चोट पहुँची । उसी रात उसका चित्र पूरा हुआ । जब दूसरे दिन सुधाकर ने देखा तो फड़क उठा । सुनयना ने पहुँच कर देखा ; सुधाकर बहुत आवेश में था । उसने उस दिन कविता सुनाईः मेरे जीवन के मांझी ! सांझ हो गई है । एक अकेला तारा

टिमटिमा रहा है और कोई शेष नहीं है । अंधियारे ने जाल बुन दिये हैं, ज्योति की रेखा मिट गई है। एक बार, मैं चाहता हूँ बस एक बार. यह सागर का हाहाकार आकर मेरे मन में सिमट जाये, क्योंकि मैं ही तेरा पार हूँ ।

'दूर कहीं से डाँडों की स्वरधार सुनाई दे रही है । फिर मंझधार में वह सूनी-सी व्याकुल होकर रो उठती है । सारी साँझ बीत जायेगी, रात आ जायेगी । मैं, मैं क्या बात नहीं कह सकूँगी, क्या दीपक-सी ही मिट जाऊँगी ?'

'मेरी आशा कब तक लहरों पर भटकेगी । क्या प्यासे नयनों को आँसू का मोल कभी नहीं मिलेगा ? एक बार, बस एक बार, अरी ओ सागर की गहराई ! उस निष्ठुर से पूछ आ कि क्या उसे अभी तक मेरी याद नहीं आई ?'

गीत समाप्त होते ही सुनयना फूट-फूट कर रो उठी । दोनों चौंके । दोनों ने एक-दूसरे को रहस्यभरी आँखों से देखा । सुनयना उठ कर चली गई ।

अनुराग ने मेरे सामने ही दूसरे दिन रोने का कारण पूछा तो उसने कहाः—मैं स्वयं नहीं जानती । जब दिल में कोई बात घुटने लगती है तो मेरा यही हाल होता है । क्यों, क्या यह इंसान की परेशानी नहीं है कि वह कुछ कहना चाहे, और कह न सके, क्योंकि उसे मालूम है कि जिससे उसे कहना है वह समझ कर भी नहीं समझना चाहता ।

'ऐसी बातें तो प्रेम में होती हैं । मैं क्या जानूँ ?' अनुराग ने कहा—जिनकी जिन्दगी में बहुत खेल होते हैं, वे इस सारी दुनिया को खिलौना समझने लगते हैं ।'

'तो दीपक जलता रहे और जल कर बुझ जाये ?'

'नहीं तो क्या चाहती हो कि पतंगे दीपक पर खेला करें ? मैं आग से बहुत डरता हूँ सुनयना । मुझे डर लगता है । आग को छूते ही मैं फुलझड़ी की तरह जल कर खत्म हो जाऊँगा ।

'पर', सुधाकर ने हठात् कहा—'ख़त्म हो जाने का मुझे ज़रा भी डर नहीं लगता। दूसरों की आग मुझे बहुत प्यारी लगती है। उसे मैं अपने दिल में रखकर अपने दिल का एक-एक कोना जगमगा देना चाहता हूँ। लेकिन मुझे यह अच्छा नहीं लगता कि जलने वाला दीपक यह गिला करे कि मैं जल रहा हूँ, या पतंगा कहे कि निर्दयी मुझे जला रहा है। जब तक जिन्दगी है तब तक आग से खेलते रहो। अगर खेल में मिट गये, तो उसे हार मत कहो।'

अनुराग ने मुस्कराकर कहा:—'हार उनकी जीत है जो जानते हैं कि आग में किसी के अरमान की कहानी है; जो आँसू से दिल का हाल लिखते हैं वे अभी तक तप कर सोना नहीं हुए। कच्चे घड़े में से ही पानी रिसता है। पक्के घड़े को पकड़ कर समंदर में उतर जाओ। थपेड़े-पर-थपेड़ा खाता चला जायेगा मगर पार उतार देगा।'

सुधाकर ने पूछा:—'और जो दो किनारों को मिला कर एक कर चुके हो, उसे भी क्या समंदर डरा सकता है? वह तो यही सोचेगा कि मेरी मंजिल पास है, मुझे कहीं जाना नहीं है।'

बात ख़त्म हो गई। मैंने देखा सुनयना ने छिपी दृष्टि से अनुराग को देख कर एक लम्बी साँस खींची। उसके बाद मुझे इतना ही मालूम पड़ा कि अनुराग पैसे के लिये बहुत दुखी था। वह एक दिन ख़ून देकर 'ब्लड-बैंक' से रुपये लाने गया। सुनयना और सुधाकर को पता चला। सुनयना रो दी। उसने सुधाकर से कहा—'तुम उनकी मदद क्यों नहीं करते?

'तुम समझती हो, शेर भूख लगने पर माँग कर खाता है?'

'लेकिन शेर को भी भूख लगती है।'

'फिर भी वह घास नहीं खाता।' सुधाकर चला गया। अनुराग ने देखा सुनयना बैठी थी। उसने कहा—ख़ून देकर जिन्दा कब तक रहोगे?

'ख़ून देकर मैं अकेला नहीं, मुझ जैसे हज़ारों मेहनतकश पलते हैं।' 'किसी से डाक्टर' अनुराग ने कहा— 'सीधे-सीधे ख़ून निकाल लेता है,

किसी को और टेढ़े तरीके से देखा होता है ।'

'आप अपने साथ ज्यादती करते हैं ।'

'ज्यादती ? छोटे दायरे से उठ कर देखो । इंसान वह है जो पहाड़ को देख कर कहता है, बड़ा तो तू है, पर पाँव मेरे ही तुझे रौंदेंगे । तेरे सिर पर मैं ही अपना झंडा गाड़ दूँगा ।'

सुनयना ने कहा:—गरीबी का सपना अमीर देखे तो उसे उसकी खामखयाली समझ कर माना भी जा सकता है पर.........

वह नहीं कह सकी । चली गई ।

मैंने कुचक्र देखे थे, किन्तु मनुष्य की मेधा की घुटन इस पढ़े-लिखे तबके में ही देखी । ऊपर से सब कुछ बिलकुल स्निग्ध, एक कल्पना लोक-सा सुखद लेकिन भीतर ही भीतर सब घुला हुआ । मनुष्य का अवरुद्ध जीवन अपने अहं में अपने को कितना बड़ा अभिशाप बना चुका था ।

दूसरे दिन ही सुनयना ने कहा:—मैं सच कह रही हूँ आप यों हजार चित्र इस तरह बनाते जायें, पर जब तक आप संसार में बाहर निकलने का यत्न नहीं करेंगे.....................

अनुराग ने कहा:—मेरे पास है क्या जिसकी नुमायश करूँ, और ऐसे दस आदमियों की इसलिए खुशामद करूँ कि पैसा मिले । वे क्या जानें कि चित्र का जीवन मनुष्य के जीवन की ही भाँति मूल्यवान है । तुम चाहती हो मैं उनके पास जाकर पैसों की भीख माँगू जो मक्कारी से पैसा कमा कर मोटी-मोटी किताबें खरीद कर सभ्य बनते हैं ।'

'मुझ पर विश्वास करते हो ?'

'अपने ऊपर भी नहीं करता ।'

'मैं यही सुनने की आशा करती थी । पर अपना एक चित्र मुझे दो, मैं बेचने का यत्न करूँगी ।' सुनयना ने कहा ।

'यह याद रखो जो भी यह चित्र खरीदेगा, वह तुम्हारी खुशी के लिये लेगा, उसे चित्र से प्रेम नहीं होगा ।'

वह चित्र लेकर चली गई। पर वह चित्र नहीं बिका। अनुराग को मालूम हो गया कि कि वह चित्र सुधाकर ने ख़रीदा था : सुनयना ने रुपये लाकर दिये तो अनुराग ने उन्हें लेना अस्वीकार कर दिया। उसने कहा—यह चित्र तुम्हारे कारण लिया गया है।

'यह असत्य है।' सुनयना रो दी।

'शायद फिर तुम्हारे भीतर कुछ घुटने लगा है ?'

'मेरी घुटन मेरे लिये है। तुम्हें उसकी फ़िक्र हुई है ?'

अनुराग चुप रहा। कहा—'मैं अपने को बेच चुका हूँ। हज़ारों लाखों के साथ मैं भी कटने चला जाऊँगा।' वह हँसा—'मैं फौज में सेकेंड लेफ्टि-नेंट हो गया हूँ। चन्द लोग सोचते हैं कि पेड़ झुकाने से फल भी झुकता है पर बेल का पेड़ न झुकता है न कोई तोड़ कर मीठा फल पाता है। वह तो पक कर अपने आप गिरता है। कुछ रुक कर उसने कहा—और जब गिरता है तब आसपास कोई नहीं होता।'

सुधाकर भी फौज में भर्ती हो गया। मैं नहीं जानता क्यों ? चलते समय अनुराग मुझे सुनयना को दे गया। वह मुझे बड़े प्रेम से पालती। मेरा जीवन सुखमय हो गया, पर सुनयना दुखी रहती। क्यों ? मैं सोचता, शायद यह अनुराग से प्रेम करती है। अनुराग यही समझता था कि वह सुधाकर को चाहती थी। गरीबी की कचोट ने उसे अफ़सर बनाया था। चिट्ठियाँ आईं। पता नहीं उनमें क्या था। कभी-कभी कोई लड़के वाले सुनयना के लिये आते फिर लौट जाते। फिर एक दिन तार आया। अनुराग छुट्टी पर आ रहा था। उस दिन सुनयना ने अपने नौकर को दो रेशमी साड़ियाँ बेटी के ब्याह के लिये इनाम में दीं। मैं चकित रह गया।

सुनयना ने शृङ्गार किया। उस दिन उसने गाना भी गाया। अनु-राग जब कमरे में आया तो सिर पर पट्टी बँधी थी। वह गम्भीर था। सुनयना ने आगे बढ़ कर कहा—'तार मुझे मिल गया था।' फिर वह उस

गाम्भीर्य्य से चौंकी। पूछा—'क्या बात है ? अरे ! तुम अकेले हो ?'

'मैंने' अनुराग ने उसी गाम्भीर्य्य से कहा—'यही तो लिखा था कि मैं अकेला आ रहा हूँ ?'

'पर तुम इतने चुप क्यों हो ? इतने दिन बाद भी मैं आज तुम्हें वैसा ही देखती हूँ।'

वह बैठा। कहा—यही तो मैं सोच रहा हूँ कि कैसे शुरू करूँ ?

'क्या हुआ ?'

'वह नहीं रहा' जिससे तुम इतना प्रेम करती थी। वह नहीं रहा।'

सुनयना फटी आँखों से उसे घूरती रही, घूरती रही। फिर जैसे उसे चक्कर आया। अनुराग ने उसे सम्भाल लिया।

'धीरज धरो सुनयना। मैं जानता था तुम इसे सहज ही सह नहीं सकोगी। मैं जानता हूँ यह प्रेमी के हृदय को बहुत बड़ी चोट है।'

सुनयना उसके सीने पर सिर रख कर रो उठी। धीरे से कहा—'क्या कह रहे हो अनुराग ? तुम्हें मेरे हृदय की कुछ भी परवाह नहीं ? तुम नहीं जानते, मैं क्या कहूँ.............

उसके तड़पते होंठ काँपते रहे, पर वह कुछ कह न सकी। तब वह फूट-फूट कर रो उठी। अनुराग उसे छोड़ कर चला गया।

सुनयना को ज्वर आ गया। बिस्तर पर पड़कर खाँसने लगी। उसकी हालत बुरी होगई। नौकर ने तार लाकर दिया। सुधाकर का था। पढ़ा। रख दिया। कोई उत्साह नहीं। नौकर ने फिर इनाम नहीं माँगा। सुनयना ज्वर में भी अनुराग के पास गई। मैं साथ गया ? वह चौंका। कहा:—बहुत बीमार हो ?

उसकी फीकी मुस्कराहट होठों पर फैली, बोली:—नहीं, ठीक हूँ। हूँ तो। तुम्हें क्या ? अपना मुँह भी कभी देखा है ?

'मैं पहले ही ऐसा कौन खूबसूरत था ?'

सुनयना मुग्ध दृष्टि से देखती रही, फिर कहा:—'सो तो मैं नहीं जानती

तुम्हें जिस नज़र से तब देखा था, उसीसे अब भी देखती हूँ।'

'इससे बढ़कर मेरी जीत नहीं है सुनयना। मैं जो चाहता था उसमें सफल हुआ हूँ। तब मैं गरीब था, अब अफ़सर हूँ। पर तुम्हारी बात सुनकर आज मेरे दिल में तुम्हारे लिये कितनी इज्जत हो गई है, यह मैं बता नहीं सकता।'

सुनयना का खुला मुँह बन्द होगया। अनुराग कहता रहाः—'पुरुष बहता पानी है, उसका भाग्य भी वैसा ही स्वतन्त्र है।'

किन्तु, सुनयना ने काटकर कहाः—'स्त्री गड्ढे का पानी है, बन्दी है, कहाँ जाये,...............

उसे चक्कर आया। अनुराग ने उसे संभाल लिया। घर पहुँचाया। पिताजी ने डाक्टर बुलाया। डाक्टर तुरन्त आया क्योंकि यहाँ फ़ीस का टोटा न था। तोते को क्या चाहिये? हरी मिर्च। खाँसी थी, ठंड लग गई थी। सुनयना के लिये नर्स रख दी गई।

रात को सुनयना का गीत मैंने सुनाः—मेरा रोग वैद्य नहीं बता सकता। तुम जिसे धमनी की धड़कन कह कर जीवन की गति कहते हो वह मेरे हाथों में दीपक की अन्तिम फफक है। मैं तो वह बुलबुल हूँ जो उपवन के चारों ओर उड़ कर पतझड़ को भगा रही थी। जब उपवन में उड़ कर लौटी तो सब जगह वसन्त था, बस मेरे ही उपवन में पतझड़ का डेरा था।

वह खाँसने लगी।

तीसरे दिन सुधाकर आया। सुनयना पड़ी रही। हाथ जोड़ दिये।

'क्या इन्हें भी?' उसने नर्स से पूछा।

नर्स सिर हिला कर चली गई। सुधाकर ने स्नेह से मुझ पर हाथ फेरा। बाहर मेघ गरज रहे थे। सुधाकर ने खिड़की बन्द कर दी। कहाः—'वह समझा था मैं मर गया।'

सुधाकर हँसा।

'सुधाकर बाबू' सुनयना ने कहा—'कंकड़ों पर चलना उतना कठिन

नहीं जितना काई पर। मैं फिसलने लगी हूँ।'

सुधाकर फिर हँसा। मैं उसके साथ चल दिया। मोटर की सैर की। वह अनुराग के घर गया। रात थी। द्वार खुला पड़ा था। उसने एक पत्र उठा कर पढ़ा और वह भागा। मैं वहीं रह गया।

पानी बरस रहा था। ठंड हो गई थी। मैं हैरान रह गया। सुनयना लड़खड़ाती आई। उसने कुछ देर कुछ सोचा, फिर चल पड़ी। मैं उसके साथ हो लिया। वह मरने जा रही थी। मैं उदास-सा उसके पीछे था। वह कगार के पीछे पहुँची। उसी समय स्वर आया:—'क्या करते हो अनुराग? मैं तुम्हें मरने न दूँगा।

'तुम यहाँ क्यों आये सुधाकर।'

सुनयना रुक कर सुनने लगी। भींग रही थी। उसने भी सुना।'

'तुम्हें मुझ से मिल कर खुशी नहीं हुई अनुराग?

'क्यों नहीं सुधाकर! लेकिन मुझे एक डर है। जब तुम नहीं रहते हो मुझे सब कुछ बेकार लगता है।'

'तभी तुम मरने आये थे?' हास्य उठा—'वाह रे मर्द दिल!'

'हँसो मत सुधाकर। मौत के कगारे पर खड़ा होकर मैं जिन्दगी से मुहब्बत नहीं दिखा सकता, मैं जिस जगह चल रहा था वह बहुत सख्त थी। मुझे ऐसी नई लहरों में जाने दो जिनमें डूबने पर इंसान तक हवा भी नहीं पहुँच सकती।'

'और वह जो रह जायेगी, उसको कौन रोयेगा?'

'रोने वाला हट रहा है, अब उसे हँसने वाला चाहिये.........'

'तुम शायद यह समझते हो कि सुनयना मुझ से प्रेम करती है?'

'नहीं तो? पर तुम यह न समझना कि मुझे वह इस वजह से रुला सकती है। मैं नहीं सुधाकर! तुम! उस लड़की के दिल को न समझ कर खून कर रहे हो, आँख खोल कर देखो। तुम्हारे बिना उसका क्या हाल हो गया है।.................'

'मैं जानता हूँ तुम पागल हो।'

'और मैं जानता हूँ तुम नासमझ हो।'

सुनयना ठठा कर हँसी। दोनों चिल्लाये—सुनयना!

वह खाँसने लगी। और वह गिरी। कगार की फिसलन से वह लुढ़की, मैंने देखा, अनुराग कूदा, सुधाकर भी नदी की प्रचण्ड धारा में सुनयना को खोजने कूदा। मैं कगार से कूद कर जोर से रो उठा : 'सुनयना!' एक करुण चीत्कार सुनाई दिया। वृद्ध पिता ने। मैंने उनकी धोती पकड़ ली और उन्हें कगारे की ओर खींचने लगा। वह समझे। हम वहीं खड़े हो गये। पिता ने पुकारा—सुनयना!! मेरी बेटी!

बिजली कड़की और पानी की फुंकार बढ़ी। मुझे लगा भूचाल आया। मैं तेजी से कूदा।

वृद्ध को कगार ले डूबा। मैंने देखा। देखता रहा। पानी भयानकता से बहने लगा था। चारों ओर अंधकार ही अंधकार था।

तूफान अट्टहास कर रहा था। मैं ठंड में काँप रहा था।

———

## : नौ :

निराश और थका हुआ मैं एक मुहल्ले में पहुँचा। बाहर के एक चबूतरे पर बैठ गया था। तभी किसी ने चुमकारा। मैं भीतर चला गया। बाद जान पहचान के मैं वहीं बैठ गया। सुषमा ने मुझे स्नेह से नहीं देखा। मैंने सोचा जिस घर की स्त्री का अनुग्रह प्राप्त न हो, वहाँ अतिथि नहीं बनना चाहिये। यह मध्यवर्गीय टटपूंजिया थे।

सुषमा ऊपर की मंजिल में चली गई। पर चलते वक्त जो बात कह गई उसने महाभारत पर विवाद करने वाले तीनों दोस्तों को टोक दिया। चौथा उसका भाई भी चौंका। बहस पुरानी संस्कृति पर हो रही थी। पर सुषमा को यह फिक्र थी कि चीनी खतम हो गई। भाई साहब थे कि उन्हें संस्कृति से प्रेम था। गम्भीर चिन्तन करते थे। दूकानदार ने महरी से कह दिया था खत्म हो गई है। अब पन्द्रह दिन बाद अगला टर्न आने को था। अब आइंदा चाय कैसे पी जायेगी? चाय, वह नशा जो बादशाहों

से लेकर गरीबों तक चलता है, जिसे साम्यवादी बहुत पीते हैं, जिसके बिना चिंतन वैसे ही खतरे में खाली रहता है, जैसे बिना नाल के घोड़ा।

'ला क्यों नहीं देते ?' हरबंस ने कहा।'

सुषमा ने टट्टर पर झुक कर कहाः—नहीं लाओगे तो मेरा क्या बिगड़ेगा ?

भैय्या अपने मस्त आदमी थे। बोलेः—आज शक्कर की जरूरत ही क्या है ? नींबू निचोड़ कर बनाओ। मच्छर भी परेशान रहेंगे कि इतनी सूइयाँ लगा दीं फिर भी मलेरिया क्यों नहीं होता ?

बात कोई बात नहीं थी। पर जब चार आदमी बैठते हैं तो कभी-कभी वैसे ही अपने जी को हल्का करने को हँस लेते हैं।

सुखराम गोरा-गोरा लड़का ही था। अभी नसें भीग रही थीं। उसकी आँखों में वही नशा था जो उस उम्र पर हर किसी के रहता है, बशर्ते जरा खाना-पीना ठीक चले। अब उसने तर्क की पूंछ पकड़ कर झटका दिया जैसे चिड़ियाघर में जँगलों के बाहर निकली पूंछ को छू कर बच्चे कभी-कभी शेर को छेड़ देते हैं। फिर वह गरजता है।

'विश्वामित्र ने जब चाण्डाल से मरा कुत्ता माँगा तो इसे महाभारत में कैसे जोड़ दिया गया ?'

हरबंस की मुंदी आँखों में वही असन्तोष था जो अमूमन हर क्लर्क की आँखों में होता है। उसकी पुतलियाँ ऐसे पलट कर, फिर सफ़ेद कोयों पर मंडराती थीं जैसे बिजली की रोशनी में सफ़ेद-सी छिपकली ने एक बड़ा-सा काला कीड़ा पकड़ लिया हो, जो बार-बार छूटने के लिये छटपटा रहा हो। उसने अंगुलियाँ चटका कर कहाः—अपने राम तो एक बात समझे। पुराने जमाने में भी भूख के लिये इंसान सब कुछ कर सकता था, वर्ना एक कुत्ते की लाश से इतना शोर मचता ?

'तुर्रा यह कि', बिशन बोले, 'फिर भी विश्वामित्र महर्षि बने रहे, महर्षि !' जैसे हनुमान ने समुद्र लाँघ कर शान से गर्दन मोड़ी हो कि जनाब

सुग्रीव जी ! जरा मुलाहिजा फर्माइये । यही है वह पहाड़ । अब सुषेण ले ! अब जड़ी-बूटी चुन ले इस पर से ।

पर भैय्या की बात और थी । पहले तो कुर्सी पर उकड़ू बैठे, फिर एक सिगरेट सुलगाई, फिर कहा:—सोचने की बात तो यह है कि अकाल में विश्वामित्र इतने व्याकुल हो गये कि वे एक मरा कुत्ता खाने पर आमदा होगये । और फिर इन्हीं के बारे में यह भी लिखा है, यह लोग हजारों बरस भूखे-प्यासे रह कर, हवा खाकर तपस्या करते थे । क्या वजह थी कि विश्वामित्र ने अकाल के दौरान में तपस्या नहीं कर ली ? या फिर..... भैया ने दोनों हाथ फैलाये क्योंकि अब सुषमा फिर चीनी की याद दिलाने लौट आई थी जैसे कह रहे हों बीच में मत बोलो–यह जो ऋषियों मुनियों के ऐसे महिमामय वर्णन हैं वे कवियों की कल्पनामात्र हैं ।

फिर भैय्या ने ऐसे देखा जैसे कह रहे हों कि खाली शेर की खाल ओढ़ने से काम नहीं चलता, सीपी निकालने के लिये समुद्र में गोता मारना पड़ता है । पर तीनों चुप बैठे रहे जैसे कोई नई बात नहीं हुई । वह तो बहुत दिन से जानते थे कि यह सब झूठ की मात्रा है, कोई मूर्ख ही इस पर गौर करता होगा । लेकिन सुषमा की आँखें जैसे चाय की सफेद प्यालियाँ थीं जिनकी पुतलियाँ चाय की रंगीन पानी थी, और वे प्यालियाँ अब शक्कर माँगती थीं ।

भैया ने अब की बार हरबंस को सिगरेट देकर रिश्वत-सी दे दी और कहा:—'पुराने जमाने में लोग दिमाग से कम सोचते थे । देखिये कहा जाता है कि दशरथ राजा साठ हजार बरस जिये । ठीक है । राम ने दस हजार बरस राज किया । दुरुस्त है । और चौदह बरस के राम को बनवास मिला, लेकिन...............'

और लेकिन पर उन्होंने ऐसा जोर दिया जैसे एक सींक पर अभी तक चेंटे चढ़ा रहे थे और अब सबको पानी के हौज में फेंक कर मजा देखना चाहते हैं—'शम्बूक ने जब तपस्या की तो शूद्र के तपस्या करने से पाँच

हज़ार बरस का एक ब्राह्मण बालक मर गया। कुछ इस तरह की बात में अक्ल की गुंजायश भी है ?'

सुषमा अब दरवाज़े से टिक गई थी, और हरबंस सिगरेट का आख़िरी कश लगा कर सिगरेट की जगह धुंआ बिशन की तरफ़ पास कर चुका था।

इतने में मेहरी की आवाज़ सुनाई दी—'भैया!'

भैया जगद्विजयी थे। सुषमा से डरते थोड़ा ही थे, तरह देते थे कि लड़की है, इसे कौन मुंह लगाये, पर मेहरी की आवाज उन्हें कुछ अच्छी नहीं लगती थी। इसलिये नहीं कि उसकी आवाज बुरी थी, कैसी भी प्यारी आवाज हो, पर वह ऐसी बातें करे जिनसे काया को कष्ट हो तो वह फिर अच्छी भली भी बुरी ही लगने लगती है। मेहरी तो उसका नाम था, असल मालकिन तो घर की वही थी। उसके पास एक सूची थी, जिसमें मर्दों के काम अलग थे, औरतों के अलग, जब इसे कोई काम नहीं करना होता या तब वह उसे मर्दों का काम कह कर भैय्या पर डाल देती थी और भैया की यह मजबूरी थी कि अगर वे कहें कि वे मर्द ही नहीं है, तो बजाय इसके कि उसे कोई स्वीकार करे, उल्टे सुषमा यह लांछन लगाती थी कि तुम जैसे आदमी तो जोरू के गुलाम होते है, अपनी जोरू तो क्या पड़ोस में भी शायद ही कहीं जोरू होगी, यहाँ तक कि सुषमा भी जोरू नहीं थी।

भैय्या ने पहली आवाज नहीं सुनी। फिर मेहरी की आवाज सुनाई दी—'लल्ली मैं जा रही हूँ। फिर जैसे किसी और से कहा—'चला जा, 'चला जा, तुझे क्या वे नहीं जानते ?'

मेहरी तो चली गई, पर भीतर घुसा सालिगा। मुहल्ले का ताँगा वाला सूरत उतर रही थी, बाल बिखरे हुए थे, रोऊँ-रोऊँ हो रहा था। यह फटे हाल थे कि भैय्या ने ज्यों ही पूछाः—क्यों क्या बात है ?' सालिगा बैठकर इत्मीनान से रोने लगा जैसे वह कुछ कह नहीं सकता। शब्दों की जगह आँखों से पिघली हुई यातना निकलने लगी और अपने ताप से उसने

लोगों के पत्थर जैसे दिल पर एक नमी पैदा की, और फिर सालिगा का दुख उनके दिलों की कसौटी पर सोने की लकीर बनकर चमका, अर्थात् दुख उसका गहरा था।

सुषमा की आँखें ऐसी निराश दिखाई दीं जैसे चाय की प्याली का हैंडल टूट गया हो और वह शोभाहीन होगई हो और हरबंस की पुतली आधी फट इमली के बीच में से झाँकने वाले चीयों की तरह बेरौनक हो गई। भैय्या शरशैया पर पड़े पितामह भीष्म की भाँति उत्तरायण की दृढ़ मन से प्रतिज्ञा करने लगे। सुखराम की हालत वह हुई जैसे तिलिस्म में फँसकर वह भूल गया हो और बिशन की आँखें आड़ी तिरछी होकर ऐसी स्थिर हो गईं जैसे लाश रखने के लिये उन्होंने बाँसों को बाँधकर तैयार कर लिया हो।

कमरे में रुदन का स्वर घुटा, फिर फफका, फिर एक ठंडी आह लकीर की तरह निकली और धुएँ की तरह फैल गई और सालिगा ने कहा। उसने कहा नहीं कमरे में सुना गया:—लड़का.........साढ़े तीन बरस का मर गया.........रात को..........कफन को पैसे नहीं..... पाँच रुपयों की जरूरत है............

भैय्या ने तर्क नहीं किया। उन्होंने सुषमा से एकदम कह दिया:— 'दे दो सुषमा।'

फिर सालिगा ने वादा किया—कल नहीं परसों, बाबूजी चुका दूंगा.. इस बखत..........

बात पूरी नहीं हुई, मुंह में से लफ्ज फिर हवा बनकर भर्राते हुए गरगराये और फिर ऐसे फैल गये जैसे किसी जल्दबाजी में नये कालीन को खरीदने के पहिले मुआइने के वक्त गाहक के हाथ से स्याही की दवात फैलकर कालीन को गन्दा कर गई और अब यह कालीन गाहक का होगया। मोल-तोल करने की भी गुंजाइश नहीं रही।

वैसे तो सब ठीक था। पर सुषमा चीनी के लिये जो पाँच रुपये का

नोट लाई थी, उसे देते समय दिल ने कहा और थोड़ी-सी तफतीश करली जाये, पर कहीं सब लोग उसे कमीन न समझें क्योंकि औरतों पर यह लाञ्छन तुरन्त लगता है, उसने रुपये भैया को दे दिये। भैय्या ने नोट सालिगा को दिया। सालिगा पहले दुख से रोया था, अब जैसे सुख से रो दिया और वह चला गया।

अब सुषमा कुर्सी खींचकर बैठ गई। भैय्या और सुषमा में ज्यादा फरक न था। दो साल छोटी थी, पर समझती अपने को बड़ी थी। सुखराम में उसे विशेष स्नेह था। उसे छोटा२ सुखराम देखकर वात्सल्य उमड़ आता था। सो उसने उसके कंधे को दबा कर कहा:—'हाँ शुकदेवजी! फिर! विश्वामित्र की बात क्यों रोक दी?'

'रोकी कहाँ?' सुखराम ने कहा—'जीजी। तुर्रा यह रहा कि जब विश्वामित्र चाण्डाल से मरा कुत्ता ले आये तो भी अकड़ नहीं छोड़ी। एन्द्राग्नि विधि से पहले देवताओं को उस गन्दे माँस की बलि दी, फिर खाया। गोया तब वह पवित्र हो गया।'

'वाह रे बुद्धू!' सुषमा ने कहा—'आग पर क्या शुद्ध नहीं हो जाता। तेरी जात के चौबे तो जिस लोटे को लेकर शौच को जाते है उसे बिना आग पर चढ़ाये सिर्फ माँजकर उसमें पानी पी लेते हैं?'

सुखराम इस चीज के लिये तैयार नहीं था। बिशन और हरबंस हँसे, भैय्या के दाँत चमके, सुखराम ने कहा:—'जीजी! दिमाग वाकई हल्का है। बात तेरी समझ में आती नहीं, बनती ऐसी है जैसे किसी से मत पूछो, लालबुझक्कड़ मैं ही हूँ मुझ से पूछो।'

यह सच रहा कि जीजी ने सुखराम का कान इस बात पर पकड़ा, पर वह भी प्रेम की वही फुहार थी, जो बाकी तीन के मुँह से झनझनाती हँसी बनकर निकली।

और तभी मेहरी का प्रवेश पौरी में फिर हुआ। भैय्या चौकन्ने हुए। कुछ नहीं कह रहे थे, लिहाजा कुछ काम दिखाने को सिगरेट ही सुलगा

ली, गोया मेहरी मान जायेगी कि भैय्या फुर्सत में नहीं हैं, सिगरेट पी रहे हैं।

आते ही उसने पूछाः—सालिगा क्यों आया था ?

सुषमा ने कारण बताया। मेहरी ने भी अफसोस किया पर उसकी आँखों में वही हमदर्दी जाहिर हुई जो कफन बेचने वाले की होती है। वह फिर चली गई।

त्रिशन उठकर भैय्या की हजामत बनाने का सामान ले आये और अपनी हजामत बनाने बैठ गये। नया ब्लेड माँगा। नहीं था। इससे चिढ़कर उन्होंने यह अफ़सोस किया कि वे गरीबों और फोकटियों में आ बैठे हैं। कुछ उनका अपनी हजामत के बारे में ऐसा खयाल था कि सारी दुनिया उनकी ठोड़ी पर बाल बढ़ने का इंतजार किये उस्तरे लिये बैठी है। उनके अपने ब्लेड ऐसी आलमारी में बन्द थे जिसकी चाबी खो गई थी और ताला टूटने में ब्लेड की कीमत से कहीं ज्यादा खर्च हो जाने का डर था।

सुषमा जब कभी अकेले में भैया से कहती कि तुम्हारे दोस्त तुम्हारे साथ बहुत फ़िज़ूलखर्ची बाँधते हैं, यहाँ आकर हजामतें तक बनाते हैं, गोया यह नाई का सैलून हो, मेरी दोस्तें ऐसा नहीं करतीं, तो भैया कहते, तुम्हारी दोस्तों के दाढ़ी निकलती है ? जिसके मुँह पर बाल नहीं निकलते, उनसे चाणक्य ने कम बात करने को कहा है। किस चाणक्य ने यह कहा है जानने को सुषमा ने चाणक्य भी पढ़ा। कहीं नहीं मिला। भैया कभी गालिब का नाम लेकर जिगर की कविता सुनाते थे, कभी हेगेल का नाम लेकर मार्क्स की बात कहते थे, कोई टोक दे तो अफ़सोस करते थे कि वे इतना ज्यादा क्यों पढ़ गए हैं, कि कभी-कभी वे भूल जाते हैं।

सुषमा ने सुखराम के बालों पर स्नेह से हाथ फेर कर कहाः—'बच्चू ! बहुत मत बका करो वर्ना फ़ेल हो जाओगे, फ़ेल !'

फ़ेल ! सुखराम निहायत नाखुश हुए। इस बात का तो वे जवाब

भी नहीं देना चाहते। बोले—'तुमको क्या मतलब। ऊपर जाकर चूल्हा फूँको। जाओ। यहाँ आदमियों में तुम्हारा क्या काम है?'

सुषमा हँसी। वैसे सड़क पर तो औरतें पाँच बरस के लड़के को अपना चौकीदार बनाकर ले जाती हैं, पर घर में बात यह नहीं होती। वहाँ या तो बाप आदमी माना जाता है, या सुसराल वाले। अपने बराबर के, या छोटों को तो आदमी ही नहीं गिना जाता।

सुषमा की हँसी फुलझड़ी की तरह जल रही थी। पर उसके अन्त में एक बड़ा पटाखा छूटा।

'भैया!' यह मेहरी की आवाज थी। वह फिर लौट आई थी।

सब चौंके। स्वर में हृदय की भावना एकदम प्रकट होती है। इस एक शब्द में भैया में ध्वनि थी कि बड़े बेवकूफ हो, हमने गलती की जो तुम्हें अक्लमन्द समझते रहे।

मेहरी ने तर्क नहीं किया। बस संक्षेप में अपनी बात कही और कही भी ऐसे जैसे वह 'मैं' नहीं थी, कहानी की पात्री थी कि मेहरी जब गई तो सोचा सालिगा की बहू से हमदर्दी दिखाती चले। पर सालिगा की बहू वहाँ एक छज्जे पर बैठी साग वाली से बातें कर रही थी। मेहरी का माथा ठनका सो सीधे तो नहीं कहा। वैसे ही घुमा फिरा कर बात की—'लाला तो अच्छे हैं?'

उसने कहा:—हाँ। है नहीं मौसी, है कहो। मेरे तो एक ही है।

'है।' कहकर मेहरी ने जो आश्चर्य किया तो सालिगा की बहू के पैरों के नीचे से धरती खिसक गई।

मेहरी ने जब सुनाया कि कैसे सालिगा आया, कैसे रोया, कैसे बेटे की मौत की बात की और पाँच रुपये ले गया, तो सालिगा की बहू ऐसी तमतमायी जैसे लोहे की करछुल चूल्हे में तप तपकर लाल हो गई हो, और बेटे की मौत की बात उसका बाप कहे, यह बात तो ऐसी छन-छन कर के जलने लगी जैसे उस गर्म लोहे पर पानी की बूँदें डाल दी गई हों।

सालिगा की बहू ने अपने पति को नासपीटा कहा, मरा-कहा और भी कुछ कहने लायक बातें कहीं और बताया कि उस पर सिपाही ने कल जुर्माना कराने की धमकी दी थी, जोर जबरन पाँच रुपये उससे माँगे, क्योंकि सालिगा कल शराब पीकर आया था........यों कहानी की असलियत खुली।

मेहरी तो बम डालकर चली गई। घायलों की यहाँ हालत यह हुई कि सुषमा ने विजय के गर्व से देखा, बिशन जल्दी-जल्दी साबुन रगड़ने लगे, हरबंस ने भैया के हाथ से सिगरेट ले ली, सुखराम ने अपना अच्छा-सा मुँह अपने मुलायम हाथों पर रखकर बड़ी-बड़ी आँखों से देखा। उसमें एक मासूमियत आगई और भैया ने बायें हाथ के अंगूठे से अपनी बाईं भौं को खुजाया।

कमरा सन्नाटे में डूब गया। दिमाग में सालिगा बैठा था और ऐसी चोटें कर रहा था जैसे कोई मूर्ति बनाने वाला अबकी बार एक गद्हे की मूर्ति बना रहा हो।

'इतनी शराफत! और यह नतीजा!' सुखराम ने कहा।

भैया जैसे फिर संभल गये। कहने लगे—पुलिस की रिश्वत, ताँगेवाले की गरीबी, झूठ से पैसे लेना, क्योंकि अशिक्षा के कारण शराब पी.... किसे दोष दिया जाये! अगर मैं कहूँ कि उसने मुझे धोखा दिया, तो क्या उसके सच कहने पर मैं उसे पैसे देता? कहता कि शराब न पी और उसे एक भाषण देता। सारा समाज........गल गया है पैसे के लिये इंसान की आबरू कुत्ता बन गई है.......काश वह चीनी वाला बनिया भी मेरा एक लेक्चर सुन लेता..........इससे तो बेहतर वह चण्डाल ही था।

सब सुन रहे थे। भैय्या ने धीरे से कहा: 'सारा समाज तपभ्रष्ट महर्षि विश्वामित्र की तरह अकाल की भूख से तड़पता हुआ, एक मरे कुत्ते के माँस की भीख माँग रहा है.........आज किसी भी देवता

की बलि देकर उस माँस की गलाजत को शुद्ध नहीं किया जा सकता....

सुषमा ने मेरे सामने सूखी रोटियाँ रख कर कहा :—'खाले ! ले !' फिर मुड़कर भाई से कहा :—'रात की सूखी बच रही हैं........'

मैंने उपेक्षा से मुँह फेर लिया ।

———

## : दस :

पर वह स्वप्न टूट गया। हिन्दुस्तान की राजनीति में नये-नये गुल खिल रहे थे। यहाँ तक कि एक दिन वह आजाद भी हो गया। मैं हँसा। साहब लोग आखिर वह डंडी मार गये कि हिन्दुस्तान की धरती लाशों से ढँक गई और नदियों में लोहू बहने लगा।

पर मेरे दुर्भाग्य का अन्त नहीं था। यहाँ एक लेखक भी आया करता था। वह भूखा था, पर मुर्दा नहीं था। चर्बी ने उसके दिमाग को छा नहीं दिया था। उसकी आर्थिक अवस्था हमेशा नाजुक रहती थी। भैया के पास आया करता था।

एक दिन सब लोग बातें कर रहे थे कि काला आदमी द्वार पर आगया। मेहरी ने देखा और कहा: 'कोई साहब आया है।'

उससे भैय्या ने पूछा नहीं कि तलाश करे कि वह कौन था। मेहरी की आदत को वे जानते थे। उनका एक दोस्त था। उसका नाम युधि-

ष्ठिर था। उसने मेहरी से कहा—'कह दो युधिष्ठिर आया है।' मेहरी ने भीतर आकर नल को खोल कर उसकी आवाज में कहा था कोई रजिस्टर आया है। सुषमा ने टट्टर पर से अपनी राय में ठीक करके कहा था कि भैय्या कोई बैरिस्टर आया है। अतः स्वयं गये।

लौटे तो साथ में लेखक था। जब वे बैठ गये तो लेखक ने कहाः—'अंगरेज तो गये, पर इन गरीबों पर मुसीबत आगई।'

मेरे कान खड़े हुए। सुनने लगा। लेखक ने सिगरेट को फेंक कर धुँआं छोड़ा और वह गम्भीर चिन्ता में पड़ा बोलने लगाः—"हम जैसे दो-तीन परिवार इकट्ठे होकर आजकल मजबूरी में शहर से दूर के बंगलों को किराये पर ले लेते हैं, पर कहलाते है कोठी में रहने वाले, वही हाल अब हर्बर्ट साहब का है। थे फटे हाल पर पहनते थे कोट पतलून ही और वे साहब ही कहलाते थे। काले रंग के उस आदमी से मेरी पहली मुलाकात मजहब पर बहस करते हुए एक दिन बाजार में हुई। मैं अपनी मशीनें बेच कर आ रहा था। आजकल यह रोजगार मुझे ठीक लगा। इधर खरीदा, उधर बेचा। बीच में थोड़ा-सा मुनाफ़ा बच गया उसमें बाल-बच्चों की गुजर सलामत। अचानक ही उस काले रंग के आदमी को मैंने एक गँवार आदमी से धर्म पर बातें करते देखा तो मुझे कौतूहल हुआ। पर सुनने का कोई चारा नहीं था। मुझे चला जाना पड़ा। बाजार से निकल जाने पर वहाँ का शोरगुल इंसान अमूमन वहीं छोड़ जाता है। उसके बाद उसे उसकी याद दूर के ढोल की तरह सुहावनी लगा करती है।

कई दिन बीत गये। जहाँ वह बिजली के खंभे के नीचे, आपने वह मुसलमान बूढ़ा भिखारी देखा होगा जो हिन्दुस्तान-पाकिस्तान बन जाने के बाद एक खतरनाक दर्दनाक आवाज में अल्लाह के नाम पर नहीं, भगवान् के नाम पर दिन भर टेढ़ा शरीर किये हाथ फैलाये बैठा रहता था, बस वहीं, उसी जगह की बात है। मैंने तो उस भिखारी के हाथ पर पैसा डाला था कि किसी ने धीमे से अंगरेजी में कहाः 'किताबें खरीदियेगा?'

'किताबें ! किताबें दुनिया में आजकल बहुत बिकती है ।' मैंने प्रश्न सुना और बढ़े हुए हाथ से किताबें लेकर देखीं, अंगरेज़ी की किताबें थीं, पुरानी, मैली, उन पर किसी अंगरेज का नाम लिखा था, और मेरे सामने अब वही आदमी फ़ैल्ट का टोप लगाये, मेरी शक्ल में आँखें घुमाये जा रहा था, जिसको मैंने उस दिन मजहब पर बहस करते देखा था।

किताबें नहीं लेनी थीं । पर उस आदमी ने दुहरा कर कहा:—'यह किताबें अच्छी है । चाहे किसी क़ीमत पर लीजिये ।'

मैंने देखा । बाजार की सारी घुटन जैसे उसी मनुष्य के मुख पर जम कर बैठ जाना चाहती थी । वह एक सलेटी रंग का कोट पहने था। उसकी सफ़ेद पतलून अब इतनी मैली-सी थी कि रंगीन मालूम देती थी। टाई तो नहीं थी, पर जूता उसका मोटे तले का था और माथे की सिकुड़न आँखों के कोनों पर इतनी लकीरें खींच चुकी थी कि उसकी पुतलियाँ चारों तरफ़ से बंधी हुई दिखाई देती थीं ।"

वह रुका और उसने चारों तरफ देखा। कमरे में एक अजीब ख़ामोशी थी। मैं चुप था और बड़े दर्द से सुन रहा था । मेरी हालत क्या और किसी तरह की थी ? पर यह मजमा मेरे ऊपर ध्यान नहीं देता था। इनकी जिन्दगी खुद कुत्तों से होड़ करती थी और उनमें एक तरह की जलन पैदा हो गई थी। उसने फिर एक लम्बी साँस लेकर कहना शुरू कर दिया था:—

मेरे दिल ने कहा: 'ईसाइयों की अंगरेज़ों के चले जाने के बाद यह हालत ! कल तक इन्हें मिशन सम्भाले रहने की चेष्टा करता था !'

पर किताबें लेनी नहीं थीं । दो आने जेब में थे । बीबी के लिए उसका एस्प्रो लेना था क्योंकि उसके सिर में हर शाम को दर्द हो आता है ।

"क्या आप सोच सकते हैं कि जब आदमी भीख माँगता है तो उसका सारा शरीर किसी वीभत्स यातना में क्षण भर हिलता है, जिसे वह नहीं कह सकता—नहीं कह सकता....'

पर उसे जाने क्यों कहना पड़ता है ? कहना पड़ता है क्योंकि वह मजबूर होता है। और मुझे उस आदमी ने छोड़ा नहीं। धीमे से कहा जैसे वह खुद भी सुनना नहीं चाहता कि वह क्या कह रहा है—'तो वैसे ही कुछ दे जाइये।'

इस सवाल को सुनकर हम लोग चौंकते नहीं। यह इस दुनियाँ में एक बहुत मामूली-सी बात है। पर इस दुनियाँ में भी तब हम चौंक जाते हैं जब हम देखते हैं कि जिसे हम अब तक क़ायदे और कानून कहते रहे हैं अब उनसे भी आगे कुछ नई बातें होने लगी हैं।

मैंने अपनी बीबी के आधे सिर दर्द की कीमत उसे दी और एक रात की उसकी कराहों को अपनी नींद के मोल ले लिया। वह झुका और चला गया।

उसके बाद बहुत दिन तक वह मुझे नहीं मिला। मैंने इधर दाल का सट्टा करने की सोची। पर उसमें जिसने राय दी थी, कुछ दग़ा किया। वैसे लोग कहा करते हैं कि सट्टाबाजार में ईमानदारी के बिना काम नहीं चलता। मैं जो बात सदा से सोचता था वही अब फिर मेरे दिमाग़ में आई। सट्टे की ईमानदारी डाकुओं की आपसी ईमानदारी है, ताकि लूट का माल बाँटने में कोई गड़बड़ न हो। मैं हार गया। हारने का अफ़सोस मुझे इसलिए हुआ कि मुझे अपने ऊपर शर्म आई। इस क़दर बेईमान और कमीनी जिन्दगी अख्तियार करते हुए मेरे दिल को मलाल पहले क्यों न हुआ यही मुझे ग़म था। पर ग़म का दूसरा पहलू अब मुझे दूर से दिखाई दिया। वही काले रंग का आदमी ऐसे कंधे झुकाये चला आ रहा था जैसे कोई टूटा-फूटा छाता हो। उसने मुझे दूर से देखा और उसकी आँखों में परिचय की भावना ऐसे इधर-उधर डोल गई जैसे जान-पहचान वाले को देखकर कुत्ता अपनी दुम हिलाता है।

सड़क पर जब हम मिले तो मैंने परिचय को बढ़ाने में ख़तरा समझा।

पर उसके लिए जान-पहचान भली थी। मै उसके सामने ऐसी बेमानी की आँखें लिए खड़ा था जैसे मैं कोई मन्त्री था जो अपने को वोट देने वाली जनता को भुला चुका था।

और उस आदमी को इससे जैसे कोई मतलब नहीं था। बात उसने वहीं से शुरू की जहाँ से कोई भी अपरिचित प्रारम्भ करता है।

'यह तकियों के गिलाफ़ खरीद लीजिये।' उसने एक गुलाम की तरह कहा।

'आप कितनी भी बहस करते हों कि भीख माँगना बुरा है, इससे समाज बिगड़ता है इत्यादि पर अगर आप एक मिनट सोचें कि परिस्थितियों के बदलते ही आप भी एक भिखारी हो सकते हैं क्योंकि इस समाज में भिखारी होना एक अत्यन्त स्वाभाविक बात है, तो आपको भिखारी की कठिन जिन्दगी का अनुमान हो जायेगा। अभी जो आप कह देते हैं कि उन्हें भीख माँगते-माँगते आदत पड़ जाती है, तब आप नहीं कहेंगे। क्योंकि फिर आप सोच सकेंगे कि माँगने वाला किस क़दर मुर्दा हो चुका है जो अपनी चलती-फिरती लाश से निकलती गरीबी की बेइज्जत सड़ाँध को इतना सूँघ सकता है, सूँघ कर इतना बेहोश हो चुकता है कि वह फिर जिन्दा नहीं रहता।

'मैं', उसने धीरे से कहा—'पादरी था पर अब—' फिर उसने कुछ बुदबुदाया—और गिलाफ़ दिखा कर कहा—'ले लीजिये।'

मेरे दिमाग में ख़याल आया कि इस पादरी की जगह मैं होता। और ऐसा ही बूढ़ा होता और मेरी बीबी ऐसे ही गिलाफ़ बनाकर देती—'वह बैठी रहती....गिलाफ़ कोई नहीं खरीदता....'

पर सच तो यह था कि गिलाफ़ मुझे लेना नहीं था।

मैंने कहा: नहीं चाहिये।

मैंने जानबूझ कर स्वर को कठोर कर लिया। मैं जानता हूँ कि भिखारी इस नियत की बू को सबसे ज्यादा पहचानता है। वह इंसान की आँख

देखकर उसके दिल को पहचानता हूं। अगर आप में कहीं भी शर्मिन्दा होने की इंसानियत बाकी है, तो वह आपको किसी भी तरह नहीं छोड़ेगा। इसलिए मैंने आवाज़ को कड़ा किया। वह मेरे सामने से चला गया।

वह आदमी नहीं गया। मुझे लगा मेरे सामने से शताब्दियों का एक शव चला जा रहा है, इसके लिए न किसी ने परमात्मा को सत्य कहा है, न किसी ने बाजे बजाये हैं। मेरे मन में आया कि वह नहीं जाये, नहीं जाये।

पर वह चला गया। और फिर मुझे मजबूरन एक नौकरी करनी पड़ी। जब जूते की एड़ी घिस जाती है, तो पहले तो कुछ दिन तक चाल में फर्क आता है, वह सधा हुआ क़दम नहीं पड़ता, और फिर कुछ दिन बाद अपने चमड़े की एड़ी ज़मीन पर घिसने लगती है। ज्यों-ज्यों मैं गरीब होता जा रहा हूँ, मुझे ऐसा लगता है कि मेरी वजह से दुनिया में पाप नहीं है, जहालत नहीं है, मजबूरी नहीं है। मेरे जैसों के ताकत में नहीं होने की वजह से यह सब कुछ है।

इतवार को धूप खिली, बदली फटी, फिर आड़ी होकर नीम चमेली पर झूली, फिर पड़ोस के सायेबान पर अपनी नाक घिस कर सोई-सी पड़ी रह गई।

मैं खाना खाने बैठा ही था और बीबी के हाथों के स्पर्श से भी, लालाजी के बेटे की क़सम से पवित्र घासलेट अभी घी नहीं हो पाया था कि माँ ने कहा: 'आ गया। यह साहब फिर आ गया।'

साहब सुनकर मैंने चिक में से झाँक कर देखा। वही आदमी खड़ा था। उसे देख कर आज मुझे लगा जैसे एक बड़ा इमली का पेड़ गाँव में सूख जाने पर जब जला दिया गया था, तो वह अधजला-सा आकाश के सामने सारी सृष्टि की रौनक और हरियाली को चुनौती देता-सा खड़ा रह गया था।

और उस आदमी ने जब धीरे से कुछ कहा, माँ ने कहा: 'तीसरे-

चौथे आता है, कभी दो आने, कभी चार आने ले ही जाता है। पादरी था, बूढ़ा हो गया है। अंगरेज चले गये तब से इनकी भी यही हालत हो गई। बेचारे के घर में एक बूढ़ी और है।'

मगर घर में उस वक्त खरोज नहीं थी। मना करने पर भी वह गया नहीं। उसने धीरे से कहा: 'मुझे भूख लगी है, कुछ भोजन दे दीजिये।'

और खाने की थाली सामने रख कर मुझे लगा इससे बढ़कर यातना नहीं हो सकती।

माँ ने एक रोटी दी उसे मिर्च रख कर। वह बरामदे में बैठ गया। सिर पर टोप लगा था। पतलून पहने वह आदमी वहीं बैठकर खाने लगा। उसने कहा—'तरकारी दे दो।'

माँ ने साग दे दिया।

वह खाने लगा। मैंने देखा था वह वृद्ध था। जीवन की सारी कठोरता सजग हो गई। उसके दाँतों में रोटी कचर-कचर नहीं कर रही थी जीवन का आत्म-सम्मान कराह रहा था। और उसको मैं देखता रहा। जैसे किसी गुलाम को कौड़े मार कर किसी पर पशु ने झुकने को मजबूर कर दिया था। उसका हाथ मुँह तक जब उठा तब मुझे लगा कि वह ठीक उसी ईसा की तरह था जिसे पापियों ने सूली पर कील ठोंक कर गाड़ दिया था, क्योंकि उसने कहा था कि पड़ोसियों को प्यार करो, तुम सब बराबर हो, क्योंकि तुम सब ख़ुदा के बेटे हो—

उसकी रोटी ख़त्म हो गई। पर उसकी ज़िन्दगी अभी ख़त्म नहीं हुई। उसकी बुढ़िया बीबी घर पर शायद भूखी ही बैठी होगी। और फिर उसने दोनों हाथ उठा कर हिन्दुओं की भाँति उस घर को नमस्कार किया जहाँ से रोटी मिली थी और वह धीरे-धीरे चला गया—

पर वह गया नहीं। मेरे दिमाग़ में एक बरामदा बन गया है, उसमें एक काले रंग का बूढ़ा अब भी बैठा है, अब भी रोटी खा रहा है, और मैं खाने की थाली लिये बैठा हूँ, उसे देख रहा हूँ........."

बात खत्म हो गई थी। मैं सोच रहा था। क्या यही है वह जिन्दगी? कहाँ गये वे सुपने?

मैं अंगरेज़ के पला था, मैंने नवाबों और ज़मींदारों के ठाठ देखे थे। और आज इन टटपूंजिये बाबूओं की तकरीरें सुन रहा हूँ। खुदा हाफ़िज़, मैं कभी किसानों, मज़दूरों के यहाँ नहीं रहा। वर्ना मेरा न जाने क्या हाल होता। ग़नीमत है कि हिन्दुस्तान के किसान, मज़दूर अभी मुझे नहीं पालते।

नहीं पालते क्योंकि यह उनकी हैसियत के बाँहर है।

सुषमा अपनी ही दुखभरी आकृति लिये नीचे आगई थी। भइया अपनी ही चिन्ता में थे। लेखक ने दूसरी सिगरेट जलाली थी।

सुषमा ने मुझे देख कर कहा:—'यह मुँह जला, न जाने कहाँ से आ गया! मुझे तो फूटी आँख नहीं सुहाता।'

लेखक ने कहा: 'सहारे की खोज दुनिया करती है और वैसे बड़ा वफ़ादार होता है।'

'होता है तो यहाँ किसकी रखवाली करेगा यह? है क्या यहाँ?'

आज़ाद! यह आज़ादी थी या भूख थी?

मैंने उनके चरणों पर सिर रखा और घर से निकल पड़ा। और फिर मेरे सामने वही भूख थी, वही परेशानी थी।

## : ग्यारह :

जिस नई महफ़िल की मैं बात कर रहा हूँ यह अपने ढंग की बेजोड़ थी। इसमें सम्बन्ध दुहरा था। मैं शिवसिंह के पास रहता। वह एक बंगले में एक कमरा लेकर रहता था। दिन भर पढ़ता, रात को पढ़कर सोता, शाम को एक छोटे से रेस्तएं में जाता। घर और रेस्तएं दोनों जगह उसका एक गाहक का-सा अधिकार था। जिस घर में वह रहता वहाँ एक नये किरायेदार आये थे। वे एक वकील थे। आज उन्हें आये कई बरस हो गये थे, पर जब से अब चाहे कितने भी दिन क्यों न हो गये हों, लोग यों ही कहते थे—जब से वकील साहब आये हैं..........वकील साहब होम्योपैथ डाक्टर भी थे।

एक रात मैं सो रहा था कि शिवसिंह ने मुझे जगादिया। मैं परेशान सा उठा। शिवसिंह बोला:—'साले तू भी सो रहा है? तो क्या हम झोंके इधर-उधर?'

मैंने दुम हिलाई : ऐसा न कहो।

पर इस वक्त तक घर भर में सनसनी फैल गई थी। सब बाहर निकल आने लगे थे, और सबके हाथ में लट्ठ था।

अपने राम ने कहा: मामला कुछ गड़बड़ है। इस वक्त आगे रहना खतरे से खाली नहीं है। वकील साहब कुछ घबराये से, कुछ परेशान से इधर-उधर घूम रहे थे। जाहिर यों हुआ कि बीच के कमरे में कोई चोर घुस गया है और उसी कमरे में उनकी बन्दूक रखी है। अब क्या किया जाये ? अगर दरवाजा तोड़ते हैं तो चोर गोली मार देगा। लाहौल बिलाकूवत ! चुनांचे डरते-डरते एक बहुत ही नाटे पहलवान ने कंबल ओढ़कर कमरे के दरवाजों की साँकलें बाहर से भी लगा दीं। यह नाटा बहादुर कंबल जो ओढ़कर गया तो लगा कि मक्खी के छत्ते म जा रहा है। वकील साहब का कमरा सब तरफ़ से बन्द था, पर रोशनदान खुले थे। ऊपर जाकर कौन बन्द करे ? गोली मार दी चोर ने तो ?

अब हालत यह कि कमरे के दोनों दरवाजों की तरफ़ लोग खड़े थे इधर वकील साहब ने कहा: 'सुनते हैं आवाज आ रही है ?'

सुना। ऐसा लगा दरवाजा हिला है। ठीक यही हाल उधर वालों का था। बात यह थी कि दरवाजा हिलायें तो उधर आवाज सुनाई दे, और उधर खड़खड़ करें तो इधर सुनाई दे। सारा खानदान परेशान। पड़ौस के मुन्सिफ़ बनिये थे। वह योगनिद्रा में सो रहे थे। जागे ही न थे। दो आदमी दौड़ कर पुलिस थाने पर चले गये। जनाने दरवाजे पर नाटा बहादुर खड़ा था। चार घंटे की कीर्तननुमा बातचीतें और जागरणनुमा बेचैनी के बाद दरोग़ा जी आये। बड़ी जीजी ने नाटे को आवाज दी—भीतर आजा भैय्या।

भैय्या बोले–'यहाँ भी तो किसी मर्द की जरूरत है ?'

दरोग़ा ने मुड़ कर मर्द को देखा और कहा:—'कोई बात नहीं; आप आजाइये।'

इसी समय दरोगा के साथ का एक आदमी जो सादे लिबास में था चोर को ढूंढने छत पर चला गया। किसी ने उसे ऊपर जाते न देखा। दरोगा ने पिस्तौल निकाल कर चोर को धमकाया—'साले खोद के गड़वा दूंगा। समझता क्या है? निकल आ बाहर.............'

और जैसे-जैसे वे पवित्र शब्द चोर के अन्तिम संस्कार करते गये, औरतों के जिस्म की मरोरियों पर जैसे सफ़ेद चन्दन का लेप होता गया। नाटा बहादुर बिल्ली की तरह देखने लगा। वलिक दरोगा को ऐसे देख रहे थे जैसे पुराने नवाब अपने लड़ते हुए बटेर को देख रहे हों।

दरोगा ने चुप होकर मुड़कर आँखें तरेर कर कहा:—'बड़ा बदमाश है।'

वकील ने ऐसे भौं उठाकर आँखें अधमींच कर मुँह में सिगरेट दबाये सिर हिलाया कि यह बात न होती तो आपको तकलीफ़ ही क्यों देते?

इधर दरोगाजी ने दरवाजे में धक्का दिया। दो दिये कि दरवाजा खुला। बड़ी सफ़ाई से नौकरानी ने चटखनी उठाकर छिपाली। तभी बड़ी जीजी चिल्लाई—'वह भागा, वह भागा........'

हूह मच गई। दरोगा का आदमी सीढ़ी से उतर कर बाहर निकल गया था।

दरोगाजी ने कहा: 'बड़ा चालाक था!'

बहरहाल चैन हुआ। सब शान्ति हो गई तो नौकरानी ने कहा: 'कोई चोर नहीं था। भैय्या ने दरवाजा बन्द किया तो चटखनी भीतर से गिर गई थी।'

शाम को शिवसिंह रेस्तरां में चला जाता। वहाँ मै भी जाता। मालिक बाप था, वह शराब पीता था। बेटा भाँग पीता था। वहाँ यह आदमी मुख्य थे—एक मदरासी था। उसे रामसिंह कमीन कहता था। दूसरे गुरू कहलाते थे। वे कम बोलते, पर उनकी धाक यह थी कि अगर बोल दिये

तो गज़ब कर देंगे। मदरासी लेखक बनता था। गुरू बड़ी नौकरी के इन्तज़ार में बेकार किये जाते थे। और एक सज्जन काले, जो मोटे लम्बे थे, काला सूट पहन कर सिगरेट का धुआँ छोड़ते थे, डाक गाड़ी के इंजन मालूम देते थे, अपने वर्णन में अपने लिये कहते थे, लम्बा चौड़ा आदमी होना चाहिये, करखनदार भी रह चुके थे, अब फिर बेकार थे। वे हर बात सुन कर ऐसे मुस्कराते थे जैसे सब बच्चे हैं नाम था चमने। लिखते नहीं थे, पर उनका ख़याल था कि वे लिखेंगे तो लोग सब किताबें जला देंगे, बस दुनिया भर में एक दो उनकी ही लिखी किताबें बच रहेंगी। झूठ बोलते थे तो इस ज़ोर से, संजीदगी से, कि सच के कान काटते थे। बड़े माकूल आदमी लगते थे और आप उन्हें कोई बात सुनाइये, सुनते ऐसे थे जैसे पहले से जानते थे, और आपकी सुनाई बात का सारांश इस सफ़ाई से लेकर आपको सुनाते थे कि ऐसा लगता था कि आप उनसे कुछ सीख कर उठ रहे हैं। बड़े तेल पिये चमरौधे जूते की तरह वे एक ही साथ मुलायम और मज़बूत दोनों ही थे। घर का वर्णन करते तो लाखों में फिसलते थे, वैसे ख़ुद सुनाते थे कि कलकत्ते से मदरास तक उन्होंने दो आने जेब में लेकर रेल के फर्स्ट क्लास में यात्रा की थी। वे नम्र थे कि अहंकारी यह उनके पूज्य पिताजी भी जानने में असमर्थ थे। इतने मीठे थे कि बड़े-बड़े धूर्त उन्हें शरीफ़ आदमी कहते थे। मित्र ऐसे थे कि रिश्तेदारों को चालाक कहते थे और यार की जेब को अपने ख़त का लिफ़ाफ़ा बना लेने में उस्ताद थे। बड़े मज़ेदार आदमी थे और खासे मोटी खाल के बेशर्म थे।

उनके बाद जो आये थे वे दिलवालिये यानी दिल्ली के थे। पैजामा और कुर्त्ता पहन कर उचक कर खड़े होते तो गर्दन ऐसे झुकी रहती जैसे कोई देसी छत्री का हैंडिल होता। उन्होंने कितने ही व्यापार किये थे। बात सूझते ही वे नक्शा और हिसाब फैलाने बैठ जाते थे। उन्होंने फ़िल्म कम्पनी, प्रकाशन, पत्र-सम्पादन, और कवि सम्मेलन से रुपया कमाने की काल्पनिक योजना बना ली थी। और असल में सबसे ज्यादा नंगे थे।

नाम था 'सरल हृदय'।

रामसिंह पतले-दुबले थे। उनके साथ चोट की कि जाहिर फोकटी थे। उनके मूषक विझल वैर के लिये मुसाफ़िरलाल थे जो अपने को बड़ा भारी हसीन समझते थे, हालाँ कि वे हुस्न के हर्फ़ आख़िर थे।

आजकल यह सब कामकाजी लोग एक ही घर में रहते थे। पुराने किराये का मकान था। सब होटल में खाते। पर ख्वाबाब इनका ऐसा था कि सोते में खोजाता, जागते ही सवार हो जाता कि भविष्य बड़ा उज्ज्वल है। उस उज्ज्वल भविष्य के माहौल में शिवसिंह रोज मजाक सीखने जाता था। यह सब सप्त महारथी थे जो रेस्तरां को घेर कर भी, उधार का चक्रव्यूह रच कर भी, रेस्तरां के मालिक रूपी अभिमन्यु को नहीं मार पाते थे। अन्त में उन्होंने एक तरकीब निकाल ली थी। वे बाप को शराब और बेटे को भाँग पिला कर उन्हें ठगते। रोज तीन रुपये इकट्ठे करना एक दम डेढ़ सौ से कहो आसान था। पर शिवसिंह जो राय में एक थे उनके साथ बाकी छः भी मकान मालिक की कृष्णनुमा चालाकियों से परेशान थे। मकान मालिक उन्हें निकाल कर हर कमरे में अपने शब्दों में 'एक एक कमरे में आराम से एक-एक गिरस्ती' बसाना चाहता था। और वे महारथी उस समय नेहरू की बुराई करते थे, फिर दबी जबान में जादू सिर पर चढ़ता, स्तालिन की बुराई में तारीफ़ करते, फिर तितर-बितर होते, जवानी के ख्वाबों को इकट्ठा करते।

यह रंग था। इन्हीं दिनों एक शाम, नाटे, चुस्त पेशानी, एक वकील साहब आये जिनके बारे में चमन की राय थी कि एक हजार रुपया कमाते थे, समझदार थे, पर सबकी एक राय थी कि वे निहायत बेवकूफ़ कचहरी में पेड़ के नीचे बैठे गाँव वालों को फुसलाने का यत्न करने वाले भूखे वकील थे। उन्हें घर के बारे में राय लेने को बुलवाया गया था। मुफ्त राय और कौन वकील देता? वे ही दे सकते थे, क्योंकि उनके पास वकालत की किताबें नहीं थीं, वकालती अक्ल थी। मकान मालिक ने उस

घर का नया नाम प्रचलित कर दिया था—'भूत निवास ।' औरतों ने डर कर बच्चों को उधर झाँकने को भी मना कर दिया था । जितना रोका जाता था, नाम उतना ही फैलता जाता था । घर भूत का मशहूर हो गया । अब जब यह लोग निकलते तो बहुत से तो ऐसे ताज्जुब से इन्हें देखते गोया यह लोग भी भूत थे । मामला यों था । और महारथी इसमें परेशान थे कि मकानदार ने यह जो पाँसा फेंका है, उसे कैसा उल्टा किया जाये ? कोई राह नज़र नहीं आ रही थी ।

घर पहुँचते ही नया समाँ देखा ।'एक रईस औरत का देहान्त हो गया था । वकील साहब होम्योपैथ अतः बने डाक्टर । उन्होंने नब्ज़ देखकर कहा: 'बेहोश है ।'

वह मर चुकी थीं । उनके बारे में मशहूर था कि अफ़ीम खाती थीं । वकील की राय थी कि पीनक में है । सब लोगों की राय थी कि वे मर चुकी हैं । पर नौ बजे रात तक वकील की बात काम देती रही । बाद में सबने उठाने का फमला किया । तभी घबराये-से अयोध्या दादा आ गये । अजीब बदहवासी में थे । उनका नाम तो था अयोध्याप्रसाद, पर एक बार उनकी मुलाक़ात एक साहब से हुई जिन्होंने अपना नाम राधामोहन गोकुल जी बताया । अयोध्या दादा ने नम्रता से कहा था—मेरा नाम सीताराम अयोध्याजी । तभी से वे अयोध्या दादा कहलाते थे । आते ही बोले : 'शहर में दंगा हो गया है । हिन्दू—मुसलमानों का । वे भगदड़ देख कर दूर ही से साइकिल पर भाग आये थे । कुंडा हो गया । अब क्या करें ? अब कैसे उठे ? अभी बात हो ही रही थी कि वकील ने बन्दूक दाग दी । तभी कहीं सड़क पर बड़े ज़ोर का फटाका हुआ । 'आगये !' वकील ने कहा—उफ़ ! फिर देखने लायक बात थी । औरतें पड़ौस के राजा भूपतसिंह के भेज दी गईं । राजा उनका नाम था, वैसे फ़कत ज़मींदार थे । और चारों तरफ़ से एक घिग्घी-सी बंधी हुई थी । शिवसिंह छिपकली की तरह होठों पर जीभ फेरते और अपना सीना मुर्गे की तरह फुलाते डर रहे थे । यह

अफ़वाह इतनी तेज़ी से बढ़ी कि कई फायर हवा में हुए। एक बार वकील को लगा झाड़ी में कोई था। गोली दाग दी। उनकी बिल्ली चिल्लाई।

'भाग गया, भाग गया!' सब चिल्लाये। नारा लगा, हर-हर महादेव!

पास के मुस्लिम मुहल्ले से लोगों ने जो सुना 'वे पुकारे: 'अल्ला हो अकबर!'

आधी रात बीत गई। कभी कोई नाके बाँधता, फुसफुसाकर बात करता। औरतें रोतीं। लाहौल-सा छा गया।

एक बजे पुलिस को बुलाया गया। शहर में कोई दंगा नहीं था। पास में ही फौजी लारी के टायर बर्स्ट हो गये थे। उनसे वे पटाखे छूटे थे। शहर में दो साँड ज़रूर लड़ पड़े थे। जिनसे भगदड़ मच गई थी। किस्सा कोताह, सब शर्मिन्दा से शव उठाने में लगे। दाहक्रिया करके लौटे तो चार बजे थे। वकील सोने में कैसी भी आवाज़ नहीं सह सकते थे। अचानक मोर बोला। जाग पड़े। आवाज़ दी 'माली!'

मेघ गम्भीर स्वर सुन माली का घर भर ही नहीं, आस पास के सब जग गये। वकील ने कहा: 'यह मोर भगा दो। सोने नहीं देता।'

पड़ौसी हँसे। क्योंकि उन्हें मोर ने नहीं, वकील ने जगा दिया था।

पर इस शोरगुल से भी अयोध्याजी की नींद न टूटी। वे अठारह घंटे सोते थे। कभी-कभी दिन के खाने के बाद जो सोते तो उसी नींद से रात की नींद मिला देते। अब उनके खर्राटे बजे। वकील ने बड़ा ज़ब्त किया, पर आख़िर कब तक? अयोध्याजी ने तो आलमारी खिसकाना शुरू किया, बन्द होने का नाम ही नहीं लेते थे। वकील ने जगाया। अयोध्याजी लपक कर उठे। फुसफुसाकर बोले—'फिर आगये?'

वे शायद ख्वाब में दंगा ही देख रहे थे।

'कोई नहीं आया,' वकील ने कहा—'ज़रा मेहरबानी होगी, खर्राटे बहुत लेते हैं आप..............

'अब नहीं लूँगा।' अयोध्याजी ने कहा। वकील साहब मान गये। जा सोये। पर अयोध्याजी के बस की बात तो नहीं थी।

सुबह वकील ने गला साफ़ करते हुए जो खखारना शुरू किया, दो चार आदमी बाहर निकल आये। समझे कोई अर्रा कर क़ै कर रहा है। शिवसिंह ने अयोध्याजी को देख कर वकील से कहाः—वकील साहब! रात सो न पाये आप? अयोध्या दादा ने बड़े खर्राटे लिये। वैसे इन्होंने वादा तो कर दिया था ............

दोनों झेंपकर हँस दिये।

शाम हो गई। चबूतरे पर कुर्सियाँ लगी हुई थीं। सब शोक में बैठे थे। रात बिल्ली मर गई थी।

बड़ा जोजी कह रहा थाः बहुत ही भोली थी।

'प्यारी तो इतनी थी कि कहा न जाये,' अयोध्याजी ने कहा।

बड़े गुणगान हुए। शिवसिंह आगया। वह भी बड़ी ग़मग़ीन शक्ल बनाये बैठा रहा। अन्त में बोलाः उनकी तो याद करते ही गला भर आता है..............

और वह सचमुच रो दिया। सभा विसर्जित हो गई।

शाम जो बीती तो रात आई। रेस्तरां पर उस दिन कोई नहीं आया था। हम लौट आये।

सुबह तार आया। वकील की भतीजी को देखने लड़के वाले आने वाले थे। उन्होंने एक्सप्रैस उत्तर में पूछा था कि कब आयें। तार अयोध्याजी दे आये, कल आ जाओ।'

दूसरे दिन जो सुबह से तैयारियाँ शुरू हुईं तो मकड़ियों की हत्या से प्रारम्भ हुई। झींगुर बेघरबार हो गये। सारा घर दमदमा उठा। पड़ोस के आलू, और मटर सरक कर इधर आगये। अयोध्याजी ने शिवसिंह से हजामत को एक ब्लेड माँगा तो शिवसिंह ने धोबी का धुला पजामा माँग लिया। सामने के जज साहब से ग्रामोफ़ोन मँगाया कि हमारा तो तभी

से बिगड़ गया है जब से रेडियो एक छोड़ दो आ गये हैं, और मुंसिफ साहब से रेकार्ड मंगवाये कि नये हों तो दे दीजिये, हमने ग्रामोफ़ोन बहुत दिन से बेकार पटक रखा है। अभी तैयारियाँ हो ही रही थीं कि अयोध्याजी को डाकिया एक खत दे गया। पढ़ते ही बोले: जीजी !

जीजी के देखो तो चेहरे पर खून नहीं। पत्र लेलिया। घर में कुहराम मच गया। अयोध्याजी गम्भीर थे, उदास। कोई रामचन्द के मरे की खबर थी। वे वकील के दूर के चाचा थे जिनके भाई पड़ोस में थे। और इधर से सारा घर रोता और कलपता चाचा के भाई के घर को रुलाने चला। इसी समय जीजी की निगाह पत्र पर पड़ी। पड़ी तो चौंकी और फिर भागी। हाथ उठा कर चिल्ला रही थी—अम्मा ! रहने दो ! रहने दो ! बस ! होगया ! होगया !

मालूम हुआ वे रामचन्द्र वकील के चाचा नहीं, अयोध्याजी के मामा थे। नतीजे में अकेले अयोध्या दादा को रोने को मजबूर होना पड़ा क्योंकि देख ही चुके थे कि रिश्तेदार की मौत पर कैसे रोया जाता है। उन्हें रोते देख सबने समझाया: रोओ नहीं। एक-न-एक दिन तो सबको मरना पड़ता है...............

अयोध्याजी ने रोना बन्द कर दिया। मुस्कराने लगे जैसे इतनी जल्दी योगी हो गये थे।

शाम को घर में ग्रामोफ़ोन बजने लगा था, पर वकील को क्रोध आ गया। अयोध्याजी और वकील साहब अहाते में लावारिस गायों के उजाड़ को रोकने भाग भाग कर गायें पकड़ने लगे। एक गाय झपट कर मुंसिफ़ साहब के घर में घुस कर जो ड्राइंग रूम से भागी तो उनका रेडियो टूट गया। गाय भाग गई। दो बदमाश गधे गिरफ्तार हुए। उन्हें पेड़ से बाँध दिया। वे अपने मस्त थे।

मैंने जाकर देखा उन्हें चिन्ता ही नहीं थी। वकील ने बड़े दरवाज़े पर घेरे के भीतर से ताला डाल दिया। रात हो गई। इन्तजार करते-करते

एक बज गया। प्रायः रतजगा होगया।

'अरे।' जीजी ने कहा— यहीं आकर ताला देखकर लौट न गये हों?'

'हो सकता है!' वकील ने पछताते हुए कहा। जाकर ताला खोला, उनका यह ख़याल था कि शहर के बाहर से आकर कोई घर में रोशनी और भीतर से लगा ताला देख कर भी लौट सकता है।

पर रात बीत गई। कोई न आया। सब बड़े खीझे। सुबह तार आया —'कल आ रहे हैं। जैसा आपने लिखा है, वही होगा।'

वकील ने कहा:—अयोध्या दादा!

'जी हाँ।' वे बोले

'आपने तार दिया था?'

'जी हाँ।' वे समझ नहीं रहे थे क्या हो गया।

राज ज़ाहिर हुआ। एक्सप्रेस की बजाय साधारण तार दे दिया गया था। अतः एक दिन की देरी हो गई।

मित्रों के ज़ोर देने से शिवसिंह भी भूत निवास में चला गया। मैं भी साथ गया।

---

## : बारह :

यहाँ मैंने नया हिन्द देखा। कॉंग्रेसियों ने बिलकुल अंगरेज़ों का जामा पहन लिया था। छुट भइयों को लूट कर छोड़ा, बड़े-बड़े गद्दियों पर बैठे, पुलिस वाले देशभक्त क़रार दिये गये। वामपंथी जेलों में पकड़ कर रख दिये गये, आज़ाद हिन्दुस्तान में लगातार दफ़ा १४४ लगी रहने लगी, और मंहगाई बढ़ती जा रही थी। रोज़ नेता झूठे वायदे करते थे, और वे ही आई० सी० एस० ऊँचे पदों पर रख दिये गये।

इन्हीं दिनों चुनाव आगये। चमन प्रान्तीय विधान सभा की सदस्यता के लिये उम्मीदवार बन कर खड़ा होगया। भूत निवास के लोगों के साथ रहना उसके लिये अपमानजनक हो गया, क्योंकि वह अब काँग्रेसी था, नेताओं में अपने को गिनने लगा था। उसके बाप ने अचानक ही सट्टे में रुपया कमाया और काँग्रेस को रिश्वत दी। काँग्रेसियों ने उसे चुन लिया।

उस वक्त उम्मीदवारों की भीड़ थी। कई जगह कांग्रेस ने ऐसे बेई-मानों को चुना था जिन पर चोरबाजारी के मुकद्दमे तक चल चुके थे। स्वतन्त्र उम्मीदवार गंगा यमुना के प्रदेश में सब प्रयत्न करके भी हार गये। कांग्रेस ने सरकारी दबाव बिना कहे भी इस्तेमाल कर लिया, क्योंकि सरकारी अफ़सर खून के पुराने पिट्ठू थे। मिनिस्टरों ने सरकारी गाड़ियाँ चलवाईं। विरोध को साम, दाम, दंड, भेद से रोका गया। गाँव वालों को सेठों का रुपया बाँटा गया। किसी का मुंह ठेका देकर बन्द किया, किसी को परमिट दे दिया गया। यहाँ तक कि बिरादरी और जाति की दुहाई भी दी गई। चमन भी जीत गया। इस क़दर कांग्रेस ने रुपया खर्च किया कि पुराने जमींदार अपने हथकंडे भूल गये।

घर का मामला बड़े संकट पर था। गुरु ने कहा: क्यों यार चमन से मिला जाये?

शिवसिंह हँसा। कहा: क्यों? तुमने चुनाव में क्या किया था? वह तुम्हारी चिन्ता क्यों करे?

बात टल गई।

तीसरे दिन मकान मालिक ने कुड़की करा ली। सब घर के बाहर निकाल दिये गये।

मैं फिर सड़क पर आ गया था।

मन उदास था। जीवन के अनेक पहलू देखे। आज मैं महसूस कर रहा हूँ कि मैं दूसरों के टुकड़ों पर पलने वाला एक जानवर ही तो था। क्यों मैं दूसरों की ताक़त को अपनी ताक़त समझता रहा? क्यों मैं उनके अधिकारों को अपना अधिकार मानता रहा? मैं कोई नहीं हूँ। मैं तो गरीब हूँ।

इंसान दौलत के पीछे पागल है। उसका निज़ाम ऐसा है कि वह गलाज़त से भरा हुआ है। जातियों का उठना गिरना उसके धन, और शक्ति के बल पर चलता है। आज मैं अनुभव करता हूँ कि जब तक श्रम

करने वाले को ही समाज में उत्पादन के साधनों पर अधिकार नहीं मिलेगा, इंसान और उसकी दुनिया निरन्तर ऐसे ही भटकती रहेगी। उसे कहीं भी चैन नहीं मिलेगा।

मैं हारा नहीं हूँ, क्योंकि एक बहुत बड़ा सत्य मेरे सामने आगया है। सारे दुखों की जड़ अधिकार है। अधिकार एक धोखा है जो मनुष्य को खाये जा रहा है।

मैं राह के किनारे बैठ गया। वहाँ एक भिखारिन बैठी थी। वह करुण स्वर से भीख मांगती थी। अपनी आँतों को मरोड़ती भूख को मिटाने के लिये वह लोगों से पुकार पुकार कर माँग रही थी। पर उड़ती धूल के सिवाय उस पर कुछ भी नहीं गिरता था।

एकाएक मैं चौंक उठा। कुछ विलायती अफ़सर भारत आये थे। उनका सरकारी इंतजाम था। मेरी और जॉन ओ' कोहन के साथ मटरूमल और एम. एल. ए. चमन मोटर में ताज देखने जा रहे थे। उनके पीछे की मोटर में वही थानेदार था, जो साहब के यहाँ आता था, वह अब डी० एस० पी० हो गया था, क्योंकि अंगरेजों ने उसके कारनामों की बड़ी तारीफ़ की थी। इस मोटर में बिगड़े रईस रमेशसिंह भी खुशामद में बैठे थे। नवाब तो पाकिस्तान चले गये थे, पर उनके एक कांग्रेसी भाई भी थे। थोड़ी देर बाद एक खूबसूरत तवायफ़ को लिये मटरूमल का बेटा उसी सड़क से सिकन्दरे की तरफ़ मोटर में गया। यह भी नेता था। तवायफ़ ऐसी बनी-ठनी थी जैसे उच्चवर्ग की स्त्री हो। मैं देखता रहा। शाम को सुखराम, भइया, बिशन और हरबस को सैकिलों पर दफ्तरों से बबुआई बजाकर लौटते देखा। उनके कटोरदान साइकिलों पर रखे थे। वे हारे हुए, थके हुए थे। सालिग रिक्शा खींच रहा था। वह और गरीब हो गया था, मरियल हो गया था। मैंने देखा उस रिक्शे में घबराया-सा लेखक था। और वही पादरी उसके सामने हाथ फैला कर खड़ा हुआ। लेखक ने दो पैसे उसके हाथ पर डाल दिये। रिक्शा चला

गया। पादेरी झुका हुआ-सा धीरे-धीरे चला गया।

वही अनाड़ी वकील इस वक्त बड़ी मोटर में जा रहा था। शायद ऊँची प्रैक्टिस पर था। उसका भी कांग्रेस में रिश्ता था। हाय! न जाने कितनों को मारेगा मैंने सोचा। तभी गुरु, शिवसिंह, मदनसी लेखक, और सरल हृदय, रामसिंह तथा मुसाफ़िरलाल मकान ढूंढ़ते हुए दिखाई दे रहे थे। आजकल वे सब सड़क के वाशिंदे थे जिसे अंगरेजी में कह सकते हैं—केयर आफ़ फुट पाथ!

मैं हँसा। न जाने क्यों और कैसे मैं हँसा। इस जिन्दगी के बीस सालों का यह है नतीजा? लौट चला। बाजार में मन्दिर के सामने देखा मटरूमल की वही बीबी डेढ़ मन घी का दीपक जलवा कर निकली थी..........पुण्य कमाने का तरीका सीधा ही था..........

## : तेरह :

मैं थक कर चूर हो गया था। आखिर मुझ से अधिक नहीं चला गया। मैं एक छोटे से घर के सामने रुक गया। भूख के मारे कलेजा मुंह को आ रहा था। मैं उसी घर में घुस गया। वहाँ मैंने देखा एक लड़का एक औरत से कह रहा था:—टैक्स तो सभी खेती पर लगा है। जमीन हमसे छिनेगी जरूर, पर काश्तकार को कांग्रेस जमींदार बना देगी। किसान को क्या मिलेगा............

औरत ने कहा: फिर हम क्या करें?

लड़का हँसा। कहा: पुरखों के पाप का फल तो भोगना ही होगा।

वह हास्य बड़ा तिक्त था। कहता जा रहा था: जो अंगरेज थे वे ही कांग्रसी हैं................

मैंने देखा। जाकर पास खड़ा हुआ। उसने मुझे नहीं पहँचाना। पर उस गरीबी में भी मैं उस लड़के को पहँचान गया। मेरा दिल भर

आया। मैंने जाकर उसके पाँव पर सिर रख दिया।

'अरे कौन है यह?' औरत ने कहा। 'किसका कुत्ता है?'

मैं कैसे बताता कि मैं इस लड़के के बाप का प्यारा था। और आज हरीप्रसाद के लड़के के यह ठाठ! यह दयनीयता?

भीतर से कोई औरत कह रही थी: यह वह गद्दी है जिस पर बैठ कर तेरे पुरखे नजर लेते थे.............

ठीक है।' लड़के ने कहा: उधेड़ लो उसे। देखो तो कितने तकिये बन जायेंगे।'

मैं खड़ा रहा। औरत ने कहा: निकालो इसे। आगया खाने? यहाँ अपना ही गुजारा नहीं चलता............

लड़के ने कहा: विलायती है............

औरत ने चिढ़ कर कहा: इसे भी विलायत भेज दो।

मुझे निकाल दिया गया। सड़क पर खड़े होकर देखा सामने जेल थी। पहले जो अंगरेजी जमाने में 'सेन्ट्रल प्रिजन' था, अब वह आजादी के बाद हिन्दी में 'केन्द्रीय कारागार' होगया था, और कुछ नहीं.........